पहिला नम्बर
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর

रवीन्द्र की कहानियाँ

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों में अनवद्य कला-शिल्प, गठन-कौशल, आश्चर्य जनक वैचित्र्य-प्रसार, काव्य-सौन्दर्य एवं औपन्यासिक चरित्र-विश्लेषण का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। बंगाली जीवन की संकीर्ण परिधि एवं अन्तर्निगूढ़ भाव-गम्भीरता के साथ उनका एक सहज सामाञ्जस्य है। ये हमारे यंत्र-बद्ध, वैचित्र्यहीन जीवन में जिस प्रचुर रसधारा एवं सूक्ष्म अनुभूतिमय सौन्दर्य को आविष्कृत करती हैं, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। इन प्रेम-कहानियों में लेखक, कवि एव मनस्तत्त्ववेत्ता की दृष्टि, जन-जीवन के ऊपर अपनी दुर्वार शक्ति का एक निगूढ़ प्रभाव छोड़ जाती है। इनमे एक युग की समाप्ति तथा दूसरे का नवारम्भ है।

प्रस्तुत संग्रह में रवीन्द्र की कतिपय श्रेष्ठ एवं सुप्रसिद्ध कहानियाँ संकलित की गई हैं, जो मूल बंगला से शब्दश: अनूदित हैं। अब तक के सभी अनुवादों में यह सर्वोत्तम तथा प्रामाणिक है।

पहला नम्बर

पहला नम्बर

[मूल-बँगला से अनूदित]

लेखक

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रभात प्रकाशन

दिल्ली * मथुरा

प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन
२०५, चावड़ी बाजार
दिल्ली

*

अनुवादक :
राजेश दीक्षित

*

प्रथम संस्करण
१६६३

*

मूल्य
दो रुपया

*

मुद्रक :
आगरा फाइन आर्ट प्रेस
राजा की मण्डी, आगरा

अनुवादकीय

प्रस्तुत संग्रह में रवीन्द्र की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। सभी का अनुवाद मूल-बंगला से अक्षरशः किया गया है। मूल के सौन्दर्य की रक्षा के लिए भाषा-प्रवाह को भी ज्यों का त्यों रखा गया है।

आशा है, पाठक इसे स्नेह सहित स्वीकार करेंगे।

—राजेश दीक्षित

प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन
२०५, चावड़ी बाजार
दिल्ली

*

अनुवादक :
राजेश दीक्षित

*

प्रथम संस्करण
१९६३

*

मूल्य
दो रुपया

*

मुद्रक :
आगरा फाइन आर्ट प्रेस
राजा की मण्डी, आगरा

अनुवादकीय

प्रस्तुत संग्रह में रवीन्द्र की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। सभी का अनुवाद मूल-बंगला से अक्षरश: किया गया है। मूल के सौन्दर्य की रक्षा के लिए भाषा-प्रवाह को भी ज्यों का त्यों रखा गया है।

आशा है, पाठक इसे स्नेह सहित स्वीकार करेंगे।

—राजेश दीक्षित

कथा-क्रम

पहला नम्बर

मैं तम्बाकू तक नहीं पीता। मेरा एक अभ्रभेदी नशा है, उसी के घिराव से अन्य सभी नशे एकदम जड़ तक सूख कर मर गये हैं। वह मेरा पुस्तकें पढ़ने का नशा है। मेरे जीवन का मन्त्र यही था—

यावज्जीवेत् वानहीं जीवेत्
ऋणं कृत्वा बहीं पठेत्

जिन्हें घूमने का शौक़ अधिक होता है, परन्तु पाथेय का अभाव रहता है, वे लोग जिस तरह से टाइमटेबिल पढ़ते हैं, अल्पायु में आर्थिक असद्भाव के दिनों में मैं उसी तरह से पुस्तकों के सूचीपत्र पढ़ा करता था। मेरे बड़े भाई के एक चचिया-श्वसुर किसी बँगला-पुस्तक के प्रकाशित होते ही उसे बिना विचार किये खरीद लेते थे और उनका मुख्य घमण्ड यही था कि उन पुस्तकों में से एक भी आज तक खोई नहीं है। शायद बंगाल देश में ऐसा सौभाग्य और किसी को नहीं मिला था। कारण, धन-बल, आयु-बल, अन्यमनस्क व्यक्ति का छाता-बल, संसार में जितने भी सरणशील पदार्थ हैं, बँगला-पुस्तकें सबसे श्रेष्ठ हैं। इससे समझा जा सकता है, भाई के

चचिया-श्वसुर की पुस्तकों की अलमारी की ताली भाई की चचिया-सास के लिए भी दुर्लभ थी। 'दीन यथा राजेन्द्र संगमे' मैं जब बाल्यावस्था में भाई साहब के साथ उनकी ससुराल में जाता था, इन रुद्ध-द्वार अलमारियों की ओर देखता हुआ समय काट देता था। उस समय मेरी आँखों की जीभ में पानी आ जाता था। इतना कहना ही यथेष्ट होगा, बचपन से ही इतनी असम्भव तरह से अधिक पढ़ा था कि परीक्षा में पास नहीं हो सका। पास करने के लिए जितना कम पढ़ना आवश्यक है, उसके लिए मेरे पास समय नहीं था।

मैं फेल होने वाला लड़का था, इसलिए मुझे एक बड़ी सुविधा यही थी कि विश्वविद्यालय के घड़े के निश्चित पानी में मेरा स्नान नहीं होता था—स्रोत के पानी में अवगाहन करने का ही मुझे अभ्यास था। आजकल मेरे पास अनेक बी० ए०, एम० ए० आते रहते हैं, वे कितने भी आधुनिक हों, आज भी वे लोग विक्टोरिया युग के नजरबन्द बने बैठे हैं। उनकी विद्या का संसार डगमगाती हुई पृथ्वी की भाँति अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के साथ एक दम जैसे इस्क्रू लगाकर कसा हुआ है; बंगाल देश के छात्रों का दल पुत्र-पौत्रादि के क्रम से उन्हीं की जैसे चिरकाल तक प्रदक्षिणा करता रहेगा। उनके मानस-रथयात्रा की गाड़ियाँ बड़े कष्ट से मिल-बेन्थाम को पार कर कार्लाइल-रस्किन में आकर जमीन पर गिर पड़ती हैं। मास्टर साहब की बोली की चहारदीवारी के बाहर वे लोग साहस करके हवा खाने के लिए नहीं निकल पाते।

परन्तु, हम लोग जिस देश के साहित्य को खूँटा समझ कर मन को बाँधे हुए जुगाली करते रहते हैं, उस देश में साहित्य तो अचल नहीं होता—वह वहाँ के प्राणों के साथ-साथ चलता है। वह प्राण मुझमें नहीं रह पाते थे, परन्तु उस चाल का अनुसरण करने की मैं इच्छा करता था। मैंने अपनी ही चेष्टा से फ्रैंच, जर्मन, इटैलियन भाषाएँ सीख ली थीं; थोड़े दिन हुए रशियन सीखना शुरू कर दिया था। आधुनिकता की जो ऐक्सप्रेस गाड़ी घण्टे में साठ मील के वेग से दौड़ती चलती है, मैंने उसीका टिकिट खरीदा था। इसीलिए मैं हैक्सले-डारविन में आकर भी रुक नहीं सका, टेनीसन पर भी विचार करते हुए नहीं डरा, यही क्यों, इब्सन-मेटरलिङ्क के नाम की नाव पकड़ कर अपने

मानसिक साहित्य में सस्ती ख्याति का बँधा हुआ कारबार चलाने में भी मुझे संकोच अनुभव होता।

मुझे भी किसी दिन मनुष्यों का एक दल खोज करके पहिचान लेगा, यह मेरी आशा से परे था। मैंने देखा, बंगाल देश में ऐसे दो-चार लड़के भी मिलते हैं जो कॉलिज भी नहीं छोड़ते, और कॉलिज के बाहर सरस्वती की जो वीणा बजती है, उसकी पुकार से भी मतवाले हो उठते हैं। वे ही क्रमशः दो-एक करके मेरे घर में आकर इकट्ठे होने लगे।

यहीं मुझे एक दूसरा नशा चढ़ा—बकना। भद्रभाषा में उसे आलोचना कहा जा सकता है। देश के चारों ओर सामयिक और असामयिक साहित्य में जो सब बातें सुनता था, वे एक ओर से ऐसी कच्ची और दूसरी ओर ऐसी पुरानी थीं कि बीच-बीच में उनकी हाँफ छुड़ा देने वाली भाप जैसी उमस को उदार-चिन्तन की खुली हवा से काट देने की इच्छा होती थी। फिर भी लिखने में शर्म आती थी। इसलिए मन लगाकर बात सुनने वाले ऐसे लोगों का सम्पर्क पाकर बच जाता था।

मेरा दल बढ़ने लगा। मैं रहता था अपनी गली के दो नम्बर वाले मकान में; चूँकि मेरा नाम अद्वैतचरण था, अतः मेरे दल का नाम हो गया द्वैताद्वैत सम्प्रदाय। हमारे इस सम्प्रदाय में किसी को भी समय-असमय का ध्यान नहीं था। कोई पंच की हुई ट्राम की टिकिट को पुस्तक के पत्रों के बीच में लगाकर किसी नयी प्रकाशित अँग्रजी की पुस्तक को हाथ में लिये हुए सुबह ही आ उपस्थित होता, तर्क करते-करते एक बज जाता, फिर भी तर्क समाप्त नहीं होता। कोई कॉलिज के ताजे नोट्स ली हुई कॉपी को लेकर शाम को आ उपस्थित होता, रात के जब दो बज जाते, उस समय भी उठने का नाम नहीं लेता। मैं प्रायः उन लोगों से खाने के लिए कहता। कारण, देखता था, साहित्य-चर्चा जो लोग करते हैं, उनमें रसज्ञता की शक्ति केवल मस्तिष्क में ही नहीं, रसना में भी खूब प्रबल होती है। परन्तु, जिनके भरोसे पर इन सब क्षुधितों को जब-तब खाने के लिए कहता था, उनकी हालत क्या होती है, उसे मैं मन में बराबर तुच्छ ही समझता आया था। संसार में भाव के और ज्ञान के जो सब बड़े-बड़े कुम्हार के चाक घूमते रहते हैं, उनमें कितने ही कच्चे रहते

हुए ही टूट कर गिर जाते हैं, उनके लिए घर-गृहस्थी का चलना-चलाना और रसोईघर की चूल्हे की अग्नि क्या दिखाई पड़ती है।

भवानी की भ्रकुटि-भंगी को भव ही जानते हैं। ऐसी बात काव्य में पढ़ी थी। परन्तु, भव के तीन नेत्र हैं, मेरे केवल दो ही थे, उनकी भी देखने की शक्ति पुस्तकें पढ़-पढ़ कर क्षीण हो गई थी। सुतरां, असमय में भोजन की तैयारी करने के लिए कहने पर मेरी पत्नी के भ्रू-चाप में किस तरह की चपलता उपस्थित हो जाती थी, वह मेरी दृष्टि में नहीं पड़ती थी। क्रमशः उन्होंने समझ लिया था, मेरे घर में असमय ही समय है एवं अनियम ही नियम है, मेरी संसार की घड़ी लापरवाह थी एवं मेरी गृहस्थी के कोटर-कोटर में उनचास पवनों का निवास था। मेरी जो कुछ अर्थ-सामर्थ्य थी, उसके लिए एक ही नाली खुली थी, वह थी पुस्तकें खरीदने की ओर; गृहस्थी की अन्य आवश्यकताएँ देशी कुत्ते की भाँति मेरे इस शौक रूपी विलायती कुत्ते की जूठन चाटकर और सूख-सूखकर किस तरह बची हुई थीं, उसका रहस्य मेरी अपेक्षा मेरी पत्नी ही अधिक जानती थीं।

नाना प्रकार के ज्ञान के बारे में बातें करना मुझ जैसे व्यक्ति के लिए नितान्त आवश्यक था। विद्या प्रकट करने के लिए नहीं, दूसरे का उपकार करने के लिए भी नहीं; वह थी बात कह-कह कर चिन्तन करने, ज्ञान को हजम करने की एक व्यायाम-प्रणाली। मैं यदि लेखक होता किंवा अध्यापक होता, तो बकना मेरे लिए बाहुल्य हो जाता। जिन्हें बँधी मजदूरी करनी पड़ती है, भोजन हजम करने के लिए उन्हें उपाय नहीं ढूँढ़ना पड़ता—जो लोग घर में बैठकर खाते हैं, उन्हें अन्ततः छत के ऊपर हन्-हन् करके पैदल चलने की जरूरत पड़ती है। मेरी वही दशा थी। इसीलिए जब मेरा द्वैतदल नहीं जमता था, उस समय मेरा एकमात्र द्वैत थीं मेरी पत्नी। उन्होंने मेरे इस मानसिक पारिपाक की सशब्द प्रक्रिया दीर्घकाल तक चुपचाप वहन की थी। यद्यपि वे पहिनती थीं मिल की साड़ी और गहनों का सोना भी विशुद्ध एवं ठोस नहीं था, परन्तु पति के द्वारा वे जो अलाप सुनती थीं; सौजात्य-विद्या (Eugenics) कहिए, मेण्डेल-तत्व कहिए और गणितिक युक्तिशास्त्र ही कहिए, उसमें सत्य किंवा मिलावट कुछ नहीं थी। मेरे दल की वृद्धि हो

जाने के बाद से इस अलाप से वे वञ्चित हो गईं थीं, परन्तु उनके लिए उनकी कोई शिकायत किसी भी दिन नहीं सुनी ।

मेरी पत्नी का नाम अनिला था। इस शब्द का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता, मेरे श्वसुर भी जानते हों, ऐसा नहीं है। शब्द सुनने में मीठा था एवं अचानक ऐसा लगता था, जैसे इसका कोई अर्थ हो। शब्दकोष में कुछ भी कहिए, नाम का असली अर्थ—मेरी पत्नी का अपने पिता की प्रिय पुत्री होना था। मेरी सास जब ढाई वर्ष का एक लड़का छोड़ कर मर गईं, उस समय उस छोटे बच्चे की देखभाल करने के मनोरम उपाय के रूप में मेरे श्वसुर ने एक और विवाह कर लिया था। वे उद्देश्य में किस तरह सफल हुए, उसे इतना कहने से ही समझा जा सकता है कि अपनी मृत्यु से दो दिन पूर्व उन्होंने अनिला का हाथ पकड़ कर कहा, "बेटी, मैं तो जा रहा हूँ, अब सरोज की बात सोचने के लिए तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं रहा है।" अपनी पत्नी और दूसरे पक्ष के लड़कों के लिए क्या व्यवस्था की थी सो तो मैं ठीक नहीं जानता, परन्तु अनिला के हाथ में गुप्त रूप से वे अपने जमा किये हुए प्रायः साढ़े सात हजार रुपये दे गये थे। कह गये थे, "इन रुपयों को ब्याज पर उठाने की जरूरत नहीं है—नगद खर्च करके इनमें से तुम सरोज के पढ़ने-लिखने की व्यवस्था कर देना।"

मुझे इस घटना से कुछ आश्चर्य हुआ था। मेरे श्वसुर केवल बुद्धिमान थे सो नहीं, वे थे जिसे कहा जाता है विज्ञ। अर्थात् झोंक में आकर कुछ नहीं करते थे, हिसाब करके चलते थे। इसीलिए अपने लड़के को पढ़ा-लिखा कर आदमी बना देने का भार यदि किसी के ऊपर देना उचित था तो वह मेरे ऊपर था, इस विषय में मुझे सन्देह नहीं था। परन्तु उनकी लड़की उनके जमाई से अधिक योग्य है, ऐसी धारणा उन्हें कैसे हो गई उसे तो नहीं कह सकता। अथच रुपये-पैसों के सम्बन्ध में वे यदि मुझे खूब अच्छा समझते, तो मेरी पत्नी के हाथों में इतने रुपये नगद न दे जाते। असल में, वे थे विक्टोरिया युग के फिलिस्टाइना, मुझे अन्त तक नहीं पहिचान सके।

मन ही मन नाराज होकर मैंने पहले तो सोचा था, इस सम्बन्ध में कोई बात ही नहीं कहूँगा। बात कही भी नहीं। विश्वास था, बात अनिला को

ही पहले कहनी पड़ेगी, इस सम्बन्ध में मेरी शरणापन्न हुए बिना उसका उपाय नहीं है। परन्तु अनिला जब मेरे पास कोई परामर्श लेने नहीं आई, उस समय सोचा, वह शायद साहस नहीं कर पा रही है। अन्त में एक दिन बातों ही बातों में जिज्ञासा की, "सरोज की पढ़ाई-लिखाई का क्या कर रही हो ?" अनिला बोली, "मास्टर रख दिया है, स्कूल भी जा रहा है।" मैंने आभास दिया, सरोज को सिखाने का भार मैं स्वयं ही लेने को राजी हूँ। आजकल विद्या-शिक्षा की जो सब नई प्रणालियाँ निकली हैं, उन्हें समझाने की चेष्टा की। अनिला ने 'हाँ' नहीं कहा, 'ना' भी नहीं कहा। इतने दिनों बाद मुझे पहली बार सन्देह हुआ, अनिला मुझ पर श्रद्धा नहीं करती। मैंने कॉलिज की परीक्षा पास नहीं की है, इसीलिए सम्भवतः मन में सोचती है कि पढ़ाई-लिखाई के बारे में परामर्श देने की क्षमता एवं अधिकार मुझ में नहीं है। इतने दिनों तक उससे सौजात्य अभिव्यक्तिवाद एवं रेडियो-चाञ्चल्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, निश्चय ही अनिला उनका मूल्य कुछ भी नहीं समझती। वह शायद सोचती है, सैकिण्ड क्लास का लड़का भी इनसे अधिक जानता है। क्योंकि, मास्टर साहब के हाथ से कान को पकड़ कर ऐंठने-मरोड़ने की विद्याएँ झुण्ड बनकर उसके मन के भीतर बैठ गई हैं। नाराज होकर मन ही मन में बोला—स्त्रियों के समीप अपनी योग्यता प्रकाशित करने की आशा मुझे छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि विद्या-बुद्धि ही उनकी प्रधान सम्पत्ति होती है।

संसार में अधिकांश बड़े-बड़े जीवन-नाटक यवनिका की ओट में ही होते रहते हैं, पाँचवाँ अङ्क समाप्त होने पर वह यवनिका अचानक ही उठ जाती है। मैं जब अपने द्वैतों को लेकर बेर्गन्स के तत्वज्ञान और इब्सन के मनस्तत्व की आलोचना करता था, उस समय सोचता था, अनिला के जीवन-यज्ञ की वेदी में कोई अग्नि ही शायद नहीं जल रही है। परन्तु, आज जब उस अतीत की ओर पीछे फिर कर देखता हूँ, उस समय स्पष्ट देख पाता हूँ कि सृष्टिकर्त्ता अग्नि जलाकर, हथौड़ी पीट कर, जीवन की प्रतियाँ तैयार करते रहते हैं, अनिला के मर्मस्थल में वे खूब ही सजग थे। उस जगह एक छोटे भाई, एक दीदी एवं एक विमाता के समावेश से नियमित रूप में एक घात-प्रतिघात की लीला चल रही थी। पुराण के वासुकि जिस पृथ्वी को

धारण किये हैं, वह पृथ्वी स्थिर है। परन्तु, संसार में जिस स्त्री को वेदना की पृथ्वी धारण करनी पड़ती है, उसकी वह पृथ्वी क्षण-क्षण में नये-नये आघात से तैयार होती रहती है। उस प्रचलित व्यथा के बोझ को छाती पर लेकर जिसे घर-गृहस्थी के छोटे से छोटे मामलों में होकर प्रतिदिन चलना पड़ता है, उसके अन्तर की बात अन्तर्यामी को छोड़कर कौन सम्पूर्ण रूप से समझ सकेगा। अन्ततः मैं तो कुछ भी नहीं समझा। कितना उद्वेग, कितने अपमानित प्रयास, पीड़ित स्नेह की कितनी अन्तर्गूढ़ व्याकुलता, मेरे समीप निःशब्दता के अन्तराल में मथित हो उठती हैं, मैंने उसे जाना ही नहीं। मैं जानता था, जिस दिन द्वैतदल के भोज का दिन उपस्थित होता, उस दिन का उद्योग पर्व ही अनिला के जीवन का प्रधानपर्व है। आज खूब समझ पा रहा हूँ, परम कथा के भीतर से इस संसार में यह छोटा भाई ही दीदी का सबसे अधिक अन्तरतम हो उठा था। सरोज को आदमी बनाने के सम्बन्ध में मेरे परामर्श और सहायता को ये लोग पूर्णरूप से अनावश्यक समझ कर उपेक्षा करते थे, इसलिए मैंने भी उस ओर एक बार भी नहीं देखा, उसका क्या हाल चल रहा है, यह बात मैंने किसी दिन पूछी भी नहीं।

इसी बीच हमारी गली के पहले नम्बर के मकान में आदमी आ गये। यह मकान पुराने समय के विख्यात धनी महाजन उद्धव बेड़ाल के जमाने में बना था। उसके बाद दो पीढ़ियों में ही उस वंश का धन-जन प्रायः समाप्त हो आया, दो-एक विधवा बची हैं। वे इस जगह नहीं रहती हैं, इसीलिए मकान बिगड़ी हुई हालत में है। बीच-बीच में विवाह आदि संस्कार के लिए इस मकान को कोई व्यक्ति थोड़े दिनों के लिए किराये पर लेकर रह जाता है, शेष समय में इतने बड़े मकान के लिए किरायेदार प्रायः नहीं मिलता। इस बार आये, मानलो, उनका नाम राजा सितांशुमौलि था, एवं समझ लिया जाय कि वे नरोत्तमपुर के जमींदार थे।

मेरे मकान के ठीक बगल में ही अकस्मात् इतने बड़े एक अविर्भाव को मैं शायद जान ही नहीं पाता। कारण, कर्ण जिस तरह से एक सहज कवच को शरीर पर धारण कर पृथ्वी पर आये थे, मेरे पास भी उसी तरह एक विधिप्रदत्त सहज कवच था। वह थी मेरी स्वाभाविक अन्यमनस्कता। मेरा

यह कवच खूब मजबूत और मोटा था। अतएव, सचराचर पृथ्वी पर चारों ओर जो सब ठेलाठाली, गोलमाल, भला-बुरा चलता रहता है, उससे आत्मरक्षा करने के लिए यह मेरा उपकरण था।

परन्तु आधुनिक काल के बड़े आदमी स्वाभाविक उत्पात से अधिक होते हैं, वे लोग अस्वाभाविक उत्पात हैं। दो हाथ, दो पाँव, एक सिर जिनके है, वे होते हैं मनुष्य; जिनके अचानक कई हाथ, पाँव और सिर बढ़ जाते हैं, वे होते हैं दैत्य। दिन-रात दुद्दाड़ शब्द से वे लोग अपनी सीमा को भङ्ग करते रहते हैं एवं अपने बाहुल्य से स्वर्ग-मर्त्य को अस्थिर किये रहते हैं। उन लोगों के प्रति मनोयोग न देना असम्भव है। जिन लोगों पर मन देने की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी मन दिये बिना भी नहीं रहा जा सकता, वे लोग ही होते हैं संसार के अस्वास्थ्य, स्वयं इन्द्र तक उनसे डरते हैं।

मन में समझ लिया, सितांशुमौलि उसी दल का मनुष्य है। अकेला एक व्यक्ति इतने बेजा तरीके से अतिरिक्त हो सकता है, इसे मैं पहले नहीं जानता था। गाड़ी-घोड़ा लोक-लश्कर लेकर उसने जैसे दस-सिर बीस-हाथ की बारी जमा दी थी। इसी कारण उसकी ज्वाला से मेरे सारस्वत स्वर्गलोक का बेड़ा रोज टूटने लगा।

उसके साथ मेरा पहला परिचय अपनी गली के मोड़ पर हुआ। इस गली का प्रधान गुण यह था कि मेरे जैसे अनमने आदमी भी सामने की ओर बिना देखे, पीठ की ओर बिना मन लगाये, दाँये-बाँये भ्रूनिक्षेप मात्र किये बिना भी इस जगह निरापद विचरण कर सकते थे। यही क्यों, इस जगह मार्ग पर चलने की हालत में भी मेरेडिथ की कहानी, ब्राउनिङ्ग के काव्य अथवा हमारे किसी आधुनिक बंगाली कवि की रचना के सम्बन्ध में मन ही मन तर्क-वितर्क करते हुए भी अपघात मृत्यु से बचकर चला जा सकता था। परन्तु, उस दिन खामखाँ एक प्रचण्ड 'हेइया' गर्जन सुनकर पीठ की ओर मुड़ कर देखा, एक खुली हुई बग्घी के एक जोड़ी लाल घोड़े मेरी पीठ के ऊपर गिरे ही जा रहे हैं, और क्या! जिनकी गाड़ी थी, वे स्वयं हाँक रहे थे, उनकी बगल में कोचवान बैठा था। बाबू ताकत लगा कर दोनों हाथों से रास खींच कर पकड़े हुए थे। मैंने किसी तरह उस सङ्कीर्ण गली की पार्श्ववर्ती एक

तम्बाकू की दूकान के खम्भे को पकड़ कर आत्मरक्षा की। देखा, मेरे ऊपर बाबू क्रुद्ध हैं ! क्यों नहीं, जो असतर्क भाव से रथ हाँकते हैं, वे असतर्क पदयात्री को किसी तरह भी क्षमा नहीं कर सकते हैं। इसके कारण का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। पैदल यात्री के केवल दो पाँव होते हैं; वह होता है स्वाभाविक मनुष्य। और, जो व्यक्ति बग्घी दौड़ाता फिरता है उसके होते हैं आठ पाँव; वह हुआ दैत्य। अपने इस अस्वाभाविक बाहुल्य के द्वारा संसार में वह उत्पात की सृष्टि करता है। दो पाँव वाले मनुष्य का विधाता इस आठ पाँव वाले आकस्मिक के लिए तैयार नहीं था।

स्वभाव का स्वास्थ्यकर नियम है इस अश्वरथ और सारथी सभी को यथा समय में भूल जाना। कारण, इस परमाश्चर्यमय संसार में ये सब विशेष रूप से याद रखने की वस्तुएँ नहीं हैं। परन्तु, प्रत्येक मनुष्य में जिस मात्रा में गोलमाल करने की स्वाभाविक सीमा है, ये लोग उसकी अपेक्षा बहुत अधिक जबर दखल किये हुए बैठे हैं। इसीलिए यद्यपि इच्छा करते ही अपने तीन नम्बर के पड़ोसी को दिन प्रतिदिन, मास प्रतिमास भूला रह सकता था, परन्तु अपने इस पहले नम्बर के पड़ोसी को एक क्षण के लिए भूले रहना भी मुझे कठिन हो गया। रात में उसके आठ-दस घोड़े अस्तबल के लकड़ी के फर्श के ऊपर बिना संगीत के ही जो ताल देते रहते थे, उससे मेरी नींद सर्वाङ्ग में चोट खाकर पिचक जाती थी। उसके ऊपर सुबह के समय उन आठ-दस घोड़ों को आठ-दस सईस जिस समय शब्द सहित मलते थे, उस समय सौजन्य की रक्षा करना भी असम्भव हो जाता था। उसके बाद उनके उड़िया बेयरा, भोजपुरी बेयरा, उनके पाँड़े-तिवारी दरवानों के दल में कोई भी स्वर-संयम किंवा मितभाषिता का पक्षपाती नहीं था। यही होते हैं दैत्य के लक्षण। वे स्वयं के लिए अशान्तिकर नहीं हो पाते। अपनी बीस नाकों के छिद्रों को बजाते समय रावण की नींद में शायद व्याघात नहीं पड़ता था, परन्तु उसके पड़ोसियों की बात पर विचार कर देखिए। स्वर्ग का प्रधान लक्षण होता है परिमाण सुषमा, दूसरी ओर एक समय जब दानवों के द्वारा स्वर्ग के नन्दनवन की शोभा नष्ट हो गई थी, उसका प्रधान लक्षण था अपरिमिति। आज वह अपरिमिति दानव ही रुपयों की थैली को वाहन बनाकर

मनुष्य के लोकालय पर आक्रमंण कर रहा है। उसकी बगल काट कर यदि बचकर निकलना चाहें तो वह चार घोड़े हाँक कर गर्दन पर आ पड़ता है—और ऊपर से आँखें दिखाता है।

उस दिन शाम को मेरे द्वैतों में से तब तक कोई नहीं आया था। मैं बैठा-बैठा ज्वार-भाटे के तत्व के सम्बन्ध में एक पुस्तक पढ़ रहा था, इसी समय हमारे मकान की दीवाल को लाँघ कर, दरवाजे को पार करती हुई मेरे पड़ोसी की एक स्मारकलिपि झनझन शब्द से मेरी काँच की खिड़की के ऊपर आ गिरी। वह टेनिस की गेंद थीं। चन्द्रमा के आकर्षण, पृथ्वी की नाड़ी की चञ्चलता, विश्वगीतिकाव्य के चिरन्तन छन्द आदि सबको छोड़कर याद आया, एक व्यक्ति मेरे पड़ोसी हैं एवं अत्यन्त अधिक रूप में हैं, मेरे लिए वे सम्पूर्ण अनावश्यक अथच अत्यन्त अवश्यम्भावी हैं। दूसरे ही क्षण देखा, मेरा बूढ़ा अयोध्या बेयरा दौड़ते-दौड़ते, हाँफते-हाँफते आ उपस्थित हुआ। यही मेरा एक मात्र अनुचर है। इसे पुकारकर नहीं पाया जा सकता, चिल्लाकर विचलित नहीं कर पाता—दुर्लभता का कारण पूछने पर कहता है, अकेला आदमी हूँ और काम बहुत हैं। आज देखा, बिना बुलाये ही गेंद को उठाकर वह बगल के मकान की ओर दौड़ गया है। खबर मिली, प्रत्येक बार गोला उठा लाने के लिए उसे चार पैसे के हिसाब से मजूरी मिलती है।

देखा, केवल मेरी खिड़की तोड़ दी है, मेरी शान्ति तोड़ दी है, यही नहीं है, मेरे अनुचर-परिचरों का मन भी टूटने लगा है। मेरी अकिंचित्करता के सम्बन्ध में अयोध्या बेयरे की अवज्ञा प्रतिदिन बढ़ उठी है, वह उतनी आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु मेरे द्वैतसम्प्रदाय के प्रधान सरदार कन्हाईलाल का मन भी, दीखता है, बगल के मकान के प्रति उत्सुक हो उठा है। मेरे ऊपर उसकी जो निष्ठा है वह उपकरण मूलक नहीं, अन्तःकरण मूलक है, यही जानकर मैं निश्चिन्त था; इसी बीच एक दिन लक्ष्य करके देखा, वह मेरे अयोध्या का अतिक्रम करके लुढ़कती हुई गेंद को उठा कर बगल के मकान की ओर दौड़ा जा रहा है। देखा, इसी बहाने से पड़ौसी के साथ बातचीत करना चाहता है। सन्देह हुआ, उसके मन का भाव ठीक ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी की भाँति नहीं है—केवल अमृत से उसका पेट नहीं भरेगा।

मैं पहले नम्बर की बाबूगीरी का खूब तीखा मजाक उड़ाने की चेष्टा करता। कहता, साज-सज्जा से मन की शून्यता को ढँकने का प्रयत्न ठीक उसी तरह है, जैसे रंगीन बादलों से आकाश को छा देने की दुराशा। जरा-सी हवा लगते ही बादल हट जायेंगे, आकाश बाहर निकल पड़ेगा। कन्हाईलाल ने एक दिन प्रतिवाद करते हुए कहा, आदमी एकदम खाली नहीं है, बी० ए० पास किया है। कन्हाईलाल स्वयं बी० ए० पास था, इसलिए इस डिग्री के सम्बन्ध में कुछ कह नहीं सका।

पहले नम्बर के प्रधान गुण थे सशब्द होना। तीन-तीन यन्त्र बजा सकते थे—कार्नेट, इसराज और चेलो। जब-तब उसका परिचय मिल जाता था। सङ्गीत के सुर के सम्बन्ध में मैं स्वयं को सुराचार्य कह कर अभिमान नहीं करता। परन्तु मेरी राय में गाना उच्च-अङ्ग की विद्या नहीं है। भाषा के अभाव में मनुष्य जिस समय गूँगा था, उसी समय गानों की उत्पत्ति हुई—उस समय मनुष्य विचार नहीं कर सकता था, इसीलिए चीत्कार करता था। आज भी जो मनुष्य आदिम अवस्था में हैं, वे केवल शब्द करने को ही स्नेह करते हैं। परन्तु देखा, मेरे द्वैतदल में अन्ततः चार लड़के हैं, पहले नम्बर का चेलो बज उठते ही जो गाणितिक न्यायशास्त्र के नव्यतम अध्याय में भी मन नहीं दे पाते हैं।

मेरे दल में से अनेक लड़के जब पहले नम्बर की ओर झुक रहे थे, इसी समय में अनिला ने एक दिन मुझसे कहा, "बगल के मकान से एक उपद्रव जुड़ गया है, अब हम लोग इस जगह से किसी अन्य मकान में चले जायें तो अच्छा रहेगा।"

बहुत खुश हुआ। अपने दल के लोगों से कहा, "देखा, स्त्रियों को कैसा एक सहज बोध होता है! इसीलिए जो सब वस्तुएँ प्रमाणयोग्य समझी जाती हैं, उसे वे लोग समझ ही नहीं पातीं, परन्तु जिन सब वस्तुओं का कोई प्रमाण ही नहीं है, उन्हें समझने में उनको तनिक भी देर नहीं होती।"

कन्हाईलाल ने हँसकर कहा, "जैसे पेंचो,[1] ब्रह्मदैत्य, ब्राह्मण की पद-

---

१. एक कल्पित देवता, जिसके असर से बच्चों को मृगी रोग हो जाने की बात कही जाती है।

धूलि का महात्म्य, पतिदेवता की पूजा का पुण्य फल इत्यादि, इत्यादि ।''

मैं बोला, ''नहीं जी, यही देखो न, हम लोग इस पहले नम्बर के आडम्बर को देखकर स्तम्भित हो गये हैं, परन्तु अनिला उसकी साज-सज्जा के भुलावे में नहीं आई है ।''

अनिला ने दो-तीन बार मकान बदलने की बात कही। मेरी इच्छा भी थी, परन्तु कलकत्ते की गली-गली में ढूँढ़ते फिरने जैसा अध्यवसाय मुझ में नहीं था। अन्त में एक दिन शाम के समय देखा गया, कन्हाईलाल एवं सतीश पहले नम्बर में टेनिस खेल रहे हैं। उसके बाद जनश्रुति सुनाई पड़ी, यति और हरेन पहले नम्बर में संगीत की महफिल में हैं, एक तो हारमोनियम बजाता है एवं दूसरा तबले की संगत करता है, और अरुण ने भी उस जगह मजाकिया गाने गा कर खूब प्रतिष्ठा पाई है। इन लोगों को मैं पाँच-छः वर्ष से जानता हूँ, परन्तु इनमें ये सब गुण थे, इसका तो मैंने सन्देह भी नहीं किया था। विशेषतः मैं जानता था, अरुण के प्रधान शौक का विषय है तुलनामूलक धर्मतत्व। वह मजाकिया गानों का उस्ताद है, इसे किस तरह समझता ?

सच बात कहता हूँ, मैं इस पहले नम्बर की मुँह से जितनी अवज्ञा करता, मन ही मन उतनी ही ईर्ष्या करता था। मैं चिन्तन कर सकता हूँ, सभी वस्तुओं का सार ग्रहण कर सकता हूँ, बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान कर सकता हूँ—मानसिक सम्पत्ति से सितांशुमौलि को अपने समकक्ष समझने की कल्पना करना असम्भव था। परन्तु, फिर भी इस मनुष्य से मैं ईर्ष्या करता हूँ। क्यों, इस बात को यदि खुलकर कहूँ तो लोग हँसेंगे। सुबह के समय सितांशु एक बड़े घोड़े पर चढ़कर घूमने निकलता—किस आश्चर्यजनक नैपुण्य के साथ लगाम खींचकर इस जानवर को वश में रखता था ! इस दृश्य को मैं नित्य ही देखता और सोचता, 'अहा, मैं यदि इसी तरह अनायास ही घोड़े को हाँक पाता !' पटुत्व नामक जो वस्तु मुझमें बिलकुल ही नहीं है, उस पर मुझे एक बड़ा गुप्त लोभ था। मैं गाने के सुरों को अच्छी तरह नहीं समझता, परन्तु खिड़की से कितने ही दिन चुपचाप देखा था कि सितांशु इसराज बजा रहा है—इस यन्त्र के ऊपर उसका एक बाधाहीन सौन्दर्यमय प्रभाव मेरे लिए आश्चर्यमय मनोहर अनुभव होता। मेरे मन में होता, यन्त्र जैसे

प्रेयसी-नारी की भाँति उसे प्यार करता है—यह अपने सभी सुरों को उसके इच्छा करते ही बेच देता है। चीज-बस्त, घर-मकान, जन्तु-मनुष्य सभी पर सितांशु का यह सहज प्रभाव एक बड़े सौन्दर्य का विस्तार करता था। यह वस्तु अनिर्वचनीय थी, मैं इसे नितान्त दुर्लभ माने बिना नहीं रह पाता था। मैं सोचता, पृथ्वी पर किसी से कोई प्रार्थना करना इस व्यक्ति के लिए अनावश्यक है, सब वस्तुएँ इसके पास स्वयं ही आ पड़ेंगी, यह अपनी इच्छा से जहाँ भी जा बैठेगा, उसी जगह उनका आसन भी पड़ जायगा।

इसीलिए जब एक-एक करके मेरे द्वैतों में से अनेक पहले नम्बर में टेनिस खेलने व कन्सर्ट बजाने लगे, उस समय स्थान-त्याग के द्वारा इन लोभियों का उद्धार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही ढूंढ़े नहीं मिला। दलाल ने आकर खबर दी, मन के मुआफिक दूसरा मकान बरानगर-काशीपुर के पास एक जगह मिल सकता है। मैं उसके लिए राजी हो गया। उस समय सुबह के साढ़े नौ बजे थे। पत्नी को तैयार होने के लिए कहने गया। उसे भण्डारघर में भी नहीं पाया, रसोईघर में भी नहीं। देखा, सोने के घर की खिड़की की पटरी पर सिर रखे हुए चुपचाप बैठी है। मुझे देखते ही उठ पड़ी। मैं बोला, "परसों नये मकान में चलना होगा।"

वह बोली, "और पन्द्रह दिन सब्र करो।"

जिज्ञास की, "किसलिए?"

अनिला बोली, "सरोज की परीक्षा का परिणाम शीघ्र ही निकलेगा—उसके लिए मन उद्विग्न है, इन कुछ दिनों तक हिलना-डुलना अच्छा नहीं लगता।"

अन्यान्य असंख्य विषयों में यही एक विषय था जिसे लेकर अपनी पत्नी के साथ मैंने कभी बातचीत नहीं की थी। सुतरां, आपातत कुछ दिन मकान बदलना मुल्तबी रहा। इसी बीच खबर मिली, सितांशु शीघ्र ही दक्षिण भारत घूमने जायेगा, सुतरां दो नम्बर के ऊपर से घनी छाया हट जायेगी।

अदृष्ट नाटक के पाँचवें अंक का शेष अचानक दृष्ट हो उठता है। कल मेरी पत्नी अपने पिता के घर गई थीं; आज लौट आने के बाद अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके बैठ गईं। वे जानती थीं, आज रात में हमारे द्वैतदल

की पूर्णिमा का भोज है। इसीलिए उनके साथ परामर्श करने के हेतु उनके दरवाजे पर दस्तक दी। पहले कोई आहट नहीं मिली। पुकारा, "अनू !" कुछ देर बाद ही अनिला ने आकर दरवाजा खोल दिया।

मैंने जिज्ञासा की, "आज रात में रसोई का प्रबन्ध सब ठीक तो है ?"

उसने कोई जवाब न देकर सिर हिलाकर जताया कि है।

मैं बोला, "तुम्हारे हाथ की बनी मछली कचौड़ी और विलायती आमड़ा की चटनी उन लोगों को खूब अच्छी लगती है, उन्हें मत भूलना।"

यह कहकर बाहर आते ही देखा कन्हाईलाल बैठा है।

मैं बोला, "कन्हाई, आज तुम लोग जरा जल्दी ही आ जाना।"

कन्हाई अचरज में भरकर बोला, "यह कैसी बात ! आज हम लोगों की सभा होगी क्या ?"

मैं बोला, "होगी क्यों नहीं ? सब तैयारी है—मैक्सिम गोर्की की नई कहानियों की पुस्तक, वेर्गन्स के ऊपर रासेल की समालोचना, मछली की कचौड़ी, यही क्यों, आमड़े की चटनी तक।"

कन्हाई अवाक् होकर मेरे मुंह की ओर देखता रहा। क्षणभर बाद ही बोला, "अद्वैत बाबू, मैं कहता हूँ, आज रहने दो।"

अन्त में पूछने पर जान सका, मेरा साला सरोज कल शाम के समय आत्म-हत्या करके मर गया है। परीक्षा में वह पास नहीं हो सका था, इसीलिए विमाता से उसे बड़ी फटकार मिली थी—सहन न कर पाने के कारण गले में चादर बाँधकर मर गया।

मैंने जिज्ञासा की, "तुमने कहाँ से सुनी ?"

वह बोला, "पहले नम्बर से।"

पहले नम्बर से ! विवरण यह था—सन्ध्या के समय अनिला के पास जब खबर आई, तब यह गाड़ी बुलवाने की प्रतीक्षा किये बिना ही अयोध्या को साथ लेकर सड़क से ही गाड़ी किराये पर करके पिता के घर चली गई था। अयोध्या द्वारा रात में सितांशुमौलि ने इस खबर को पाते ही, उसी समय उस जगह जाकर पुलिस को ठण्डा करके, स्वयं श्मसान में उपस्थित रह कर मृत-देह का दाह-संस्कार करा दिया था।

घबराकर उसी समय अन्तःपुर में गया। मन में सोचा था, अनिला शायद दरवाजा बन्द करके अपने सोने के कमरे में आश्रय लिये होगी। परन्तु, इस बार जाकर देखा, भण्डार के सामने वाले बरामदे में बैठी हुई वह आमड़े की चटनी की तैयारी कर रही है। जब लक्ष्य करके उसका मुँह देखा तब समझा, एक रात में उसका जीवन उलट-पुलट हो गया है। मैंने शिकायत करते हुए कहा, "मुझ से कुछ कहा क्यों नहीं ?"

उसने अपनी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर एक बार मेरे मुँह की ओर देखा—कोई बात नहीं कही। मैं लज्जा से अत्यन्त छोटा हो गया। यदि अनिला कहती, 'तुम से कहने पर लाभ क्या था', तब तो मुझे जवाब देने के लिए कुछ भी नहीं रहता। जीवन के इन सब उपद्रव—संसार के सुख-दुःख—को लेकर किस तरह व्यवहार करना पड़ता है, मैं क्या उसके बारे में कुछ भी जानता हूँ !

मैं बोला, "अनिल, यह सब रहने दो, आज हमारी सभा नहीं होगी।"

वह बोली, "तुम लोगों की सभा हो या न हो, आज मेरा निमन्त्रण है।"

मैंने मन में जरा आराम पाया। सोचा, अनिला का शोक उतना अधिक कुछ नहीं है। सोचा, वह जो किसी समय में उसके साथ बड़े-बड़े विषयों की बातें कहा करता था, उसी के फल से उसका मन बहुत कुछ निरासक्त हो आया है। यद्यपि सब बातें समझने योग्य शिक्षा एवं शक्ति उसमें नहीं थी, परन्तु फिर भी पर्सनल मैगनेटिज्म नामक एक वस्तु तो है ही।

सन्ध्या के समय मेरे द्वतदल के दो-चार आदमी कम पड़ गये। कन्हाई तो आया ही नहीं। पहले नम्बर में जिन्होंने टेनिस के दल में योग दिया था, उनमें से भी कोई नहीं आया। सुना, कल सुबह ही गाड़ी से सितांशुमौलि जा रहा है, इसलिए ये लोग उस जगह विदाई-भोज खाने गये हैं। इधर अनिला ने आज जैसा भोज का आयोजन किया, वैसा और किसी भी दिन नहीं किया था। यही क्यों, मेरे जैसे वे हिसाबी व्यक्ति को भी यह बात मन में सोचे बिना न रहा जा सका कि खर्च कुछ अधिक कर दिया गया है।

उस दिन खान-पान समाप्त कर, सभा भङ्ग होने में रात का एक-डेढ़

बज गया। मैं थक कर उसी समय सोने चला गया। अनिला से जिज्ञासा की, "सोओगी नहीं ?"

वह बोली, "बर्तनों को उठाना पड़ेगा।"

दूसरे दिन जब उठा उस समय प्रायः आठ बजे का समय होगा। सोने के कमरे में तिपाई के ऊपर जिस जगह मैं अपना चश्मा उतार कर रख देता था, उस जगह देखा, मेरे चश्मे से दबा हुआ एक टुकड़ा कागज रखा है, उसमें अनिला के हाथ की लिखावट थी—"मैं जा रही हूँ। मुझे ढूंढ़ने की चेष्टा मत करना। करने पर भी ढूंढ़े नहीं पा सकोगे।"

कुछ समझ नहीं सका। तिपाई के ऊपर एक टिन का बक्स था—उसे खोल कर देखा, उसके भीतर अनिला के सभी गहने—यही क्यों, उसके हाथ की चूड़ियाँ तक, केवल उसकी शंख की चूड़ियाँ एवं हाथ के लोहे[1] के अतिरिक्त रखी थीं। एक खाने में तालियों का गुच्छा, अन्य खानों में कागज में लिपटे हुए कुछ रुपये, चवन्नी, दुअन्नियाँ थीं। अर्थात् महीने के खर्च में से बचा कर अनिला के हाथ में जो कुछ जमा था, उसका आखिरी पैसा तक रख गई थी। एक कॉपी में बासन-कूसन, चीज-बत्त की सूची एवं धोबी के यहाँ जो कपड़े गये थे, उनका सब हिसाब था। इनके साथ ही दूध वाले एवं मोदी की दूकान के देने का हिसाब और रुपये थे, केवल उसका स्वयं का ठिकाना नहीं था।

इसीसे समझ गया, अनिला चली गई है। सारा घर तन्न-तन्न करके देखा—अपनी ससुराल में पता लगाया—कहीं पर भी वह नहीं थी। किसी एक विशेष घटना के घटने पर उसके सम्बन्ध में जिस तरह की विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है, किसी भी दिन मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं सोच पाया था। छाती के भीतर हाहाकार उठने लगा। अचानक पहले नम्बर की ओर ताक कर देखा, उस मकान का दरवाजा और खिड़कियाँ बन्द थे। ड्यौढ़ी के के पास दरबानजी हुक्के से तम्बाकू पी रहे थे। राजा बाबू सुबह होने से पहले ही चले गये थे। मन के भीतर छौंक सा लग गया। हठात् समझ में आया,

---

१. बंगाल में सधवा स्त्रियाँ सुहाग-चिह्न के रूप में शंख की चूड़ियाँ एवं लोहे की एक चूड़ी पहिनती हैं।

मैं जिस समय एक मन से नव्यतम न्याय की आलोचना कर रहा था, उस समय मानव-समाज का एक प्राचीनतम अन्याय मेरे घर में जाल फैला रहा था। फ्लोवेयर, टॉल्सटाय, तुर्गनेव आदि बड़े-बड़े कहानी लेखकों की पुस्तकों में जिस समय इस तरह की घटनाओं को पढ़ा था, उस समय बड़े आनन्द से सूक्ष्मातिसूक्ष्म करके उसकी तत्वकथा का विश्लेषण करके देखा था। परन्तु, अपने ही घर में यह सुनिश्चित रूप से घट सकेगा, इसकी तो किसी दिन स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

पहले धक्के को सँभाल कर मैंने तत्वज्ञानी की भाँति सम्पूर्ण मामले को यथोचित हल्का करके देखने की चेष्टा की। जिस दिन मेरा विवाह हुआ था, उस दिन की बात को याद करके सूखी हँसी हँसा। सोचा, मनुष्य कितनी आकांक्षा, कितने आयोजन, कितने आवेग का अपव्यय करता रहता है। कितने दिन, कितनी रातें, कितने वर्ष निश्चिन्त मन से कट गये; स्त्री नामक एक सजीव पदार्थ अवश्य है, कह कर आँखें बन्द कर रखी थीं, इसी बीच आज अचानक आँखें खोल कर देखता हूँ, बुदबुद फट गया है। गई तो चली जाय— परन्तु, संसार में सभी तो बुदबुद नहीं हैं। युगयुगान्तर के जन्म-मृत्यु का अतिक्रम करके टिकी रहें; ऐसी सब वस्तुओं को क्या मैंने पहिचानना नहीं सीखा है ?

परन्तु देखा, अचानक इस आघात से मेरे भीतर नव्यकाल का ज्ञानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, और कोई आदिकाल का प्राणी जग उठ कर भूख से रोता हुआ फिरने लगा। बरामदे की छत पर चहलकदमी करते-करते, सूने मकान को घूरते-घूरते, अन्त में, जिस जगह खिड़की के पास कितने ही दिन अपनी स्त्री को अकेले चुप होकर बैठे हुए देखा था, एक दिन अपने उसी सोने के कमरे में जाकर पागल की भाँति समस्त वस्तुओं को उलटने-पलटने लगा। अनिला के केश बाँधने के दर्पण की दराज अचानक खींच कर खोलते ही रेशम के लाल फीते में बँधी चिट्ठियों की एक गड्डी बाहर निकल पड़ी। चिट्ठियाँ पहले नम्बर से आई थीं। छाती जल उठी। एक बार मन में हुआ, सबको जला डालूँ। परन्तु जिस जगह बड़ी वेदना होती है, वहीं भयंकर खिचाव

भी होता है। इन चिट्ठियों को पूरा पढ़े बिना रहने की सामर्थ्य मुझ में नहीं थी।

इन चिट्ठियों को पचास बार पढ़ा। पहली चिट्ठी तीन-चार टुकड़े करके फाड़ दी गई थी। लगा, पाठिका ने पढ़कर उन्हें फाड़ डाला था, उसके बाद फिर यत्नपूर्वक एक कागज के ऊपर गोंद लगाकर जोड़ कर रख दिया है। वह चिट्‌ठी यह थी—

"मेरी यह चिट्ठी बिना पढ़े ही यदि तुम फाड़ डालो तो भी मुझे दुःख नहीं होगा। मुझे जो बात कहनी है, वह कहनी ही पड़ेगी।

"मैंने तुम्हें देखा है। इतने दिनों से इस पृथ्वी पर आँखें गढ़ा कर घूम रहा हूँ, परन्तु, देखने योग्य दर्शन मेरे जीवन की इस बत्तीस वर्ष की आयु में पहली बार हुआ है। आँखों के ऊपर नींद का पर्दा खिचा हुआ था; तुमने सोने की सलाई घुला दी है—आज मैंने नव जागरण के भीतर से तुम्हें देखा है, जो कि तुम स्वयं अपने सृष्टिकर्ता के परम विस्मय का धन हो, उसी तुमको देखा है। मुझे जो पाना था वह पा लिया है, और कुछ नहीं चाहता, केवल तुम्हारा स्तव तुम्हें सुनाना चाहता हूँ। यदि मैं कवि होता तो अपने इस स्तव को तुम्हारे पास चिट्ठी में लिखकर भेजने की आवश्यकता नहीं होती, छन्द में भर कर सम्पूर्ण संसार के कण्ठ में उसे प्रतिष्ठित कर जाता। मेरी इस चिट्ठी का कोई उत्तर नहीं दोगी, जानता हूँ—परन्तु, मुझे गलत मत समझना। मैं तुम्हारी कोई क्षति कर सकता हूँ, ऐसा सन्देह भी मन में न रख कर, मेरी पूजा को चुपचाप ग्रहण करो। मेरी इस श्रद्धा को यदि तुम श्रद्धा कर सकीं तो उससे तुम्हारा भी भला होगा। मैं कौन हूँ, यह बात लिखने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु निश्चय ही वह तुम्हारे मन से छिपी नहीं रहेगी।"

इस तरह की पच्चीस चिट्ठियाँ थीं। इनमें से किसी चिट्ठी का उत्तर अनिला के पास से गया था, इन चिट्ठियों के भीतर उसका कोई संकेत नहीं था। यदि जाता तो उसी समय बेसुरा वज उठता—-किंवा उस स्थिति में सोने की सलाई के जादू को एक दम मिटा कर स्तवगान नीरव हो जाता।

परन्तु, यह कैसा आश्चर्य है! सितांशु ने जिसे क्षण भर में ही देख लिया था, आज आठ वर्ष की घनिष्टता के बाद भी इन पराई चिट्ठियों के

भीतर से उसे पहली बार देखा । मेरी आँखों के ऊपर नींद का कितना मोटा पर्दा है, सो नहीं जान पाया ! पुरोहित के हाथ में से अनिला को मैंने पाया था, परन्तु उसके विधाता के हाथ में से उसे ग्रहण करने का मूल्य मैंने कुछ भी नहीं दिया । मैंने अपने द्वैतदल को एवं नव्यन्याय को उसकी अपेक्षा अनेक बड़ा करके देखा था । सुतरां, जिसे मैंने किसी दिन भी नहीं देखा, एक पल के लिये भी नहीं पाया, उसे और कोई यदि अपने जीवन का उत्सर्ग करके पा सके, तब क्या कह कर किसी के पास अपने नुकसान की नालिश करूँगा ।

अन्तिम चिट्ठी यह थी—

"बाहर से मैं तुम्हारा कुछ नहीं जानता, परन्तु हृदय की ओर से मैंने देखी है तुम्हारी वेदना । इसी जगह मेरी बड़ी कठिन परीक्षा है । मेरी यह पुरुष की भुजाएँ निश्चेष्ट नहीं रहना चाहतीं । इच्छा होती है, स्वर्ग-मर्त्य का सभी शासन विदीर्ण करके तुम्हारा तुम्हारे जीवन की व्यर्थता से उद्धार करके ले आऊँ । उसके बाद यह भी मन में होता है, तुम्हारा दुःख ही तुम्हारे अन्तर्यामी का आसन है । उसे हरण करने का अधिकार मुझे नहीं है । कल सुबह तक की मोहलत ली है । इस बीच यदि कोई देववाणी मेरी इस द्विधा को मिटा देगी तो फिर जो भी होना है, वह सब कुछ हो जायगा । वासना की प्रबल हवा से हमारे मार्ग दर्शक दीपक को बुझा देगी । इसीलिए मैं मन को शान्त रखूँगा—एकाग्र मन से यही मन्त्र जपूँगा कि तुम्हारा कल्याण हो ।"

समझा जा सकता था, द्विधा दूर हो गई है—दोनों व्यक्तियों का पथ एक होकर मिल गया है । बीच में से सितांशु लिखित यह चिट्ठी मेरी ही चिट्ठी हो गई—यह आज मेरे ही प्राण का स्तवमन्त्र है ।

कितना समय बीत गया, पुस्तकें पढ़ना अब अच्छी नहीं लगता । अनिला को एक बार किसी तरह देखने के लिए मन के भीतर ऐसी वेदना उपस्थित हो गई कि किसी तरह भी मन को स्थिर नहीं रख सका । पता लगाने पर मालूम हुआ, सितांशु उस समय मसूरी पहाड़ पर था ।

उस जगह जाकर सितांशु को अनेक बार सड़क पर घूमते हुए देखा, परन्तु उसके साथ तो अनिला को देखा नहीं । भय हुआ, कहीं उसे अपमानित करके त्याग न दिया हो । मैंने और न ठहर पाकर एक बार जाकर उसके

साथ भेट की। सब बातों को विस्तारपूर्वक लिखने की आवश्यकता नहीं है। सितांशु बोला, "मैंने उनके पास से जीवन में केवल एकमात्र चिट्ठी पाई है— वह यह देखिए।"

यह कहकर सितांशु ने अपनी जेब से एक छोटा सा ऐनामिल किया हुआ सोने का कार्ड-केस खोल कर उसके भीतर से एक टुकड़ा कागज निकाल कर दे दिया। उसमें लिखा था, "मैं जा रही हूँ, मुझे ढूँढ़ने की चेष्टा मत करना। करने पर भी ढूँढ़े नहीं पा सकोगे।"

वही अक्षर, वही लिखावट, वही तारीख एवं जिस नीले रंग की चिट्ठी के कागज का आधा हिस्सा मेरे पास था, यह टुकड़ा भी उसी का शेष आधा था।

पात्र और पात्री

— १ —

इससे पूर्व प्रजापति कभी भी मेरे मस्तिष्क में नहीं बैठे थे, परन्तु एक बार मेरे मानस-पद्म में बैठे थे। उस समय मेरी आयु सोलह थी। उसके बाद से, कच्ची नींद में चौंका देने से जिस तरह नींद फिर नहीं आना चाहती, मेरी वही दशा हुई। मेरे बन्धु-बान्धवों में से कोई-कोई दार-परिग्रह के व्यापार में द्वितीय, यही क्यों, तृतीय पक्ष में प्रमोशन पा चुके थे; मैंने कौमार्य की लास्ट बैंच पर बैठकर सूने संसार की कड़ी-काठ गिनते हुए समय बिता दिया।

मैंने चौदह वर्ष की आयु में एन्ट्रेन्स पास की थी। उस समय विवाह किंवा एन्ट्रेन्स परीक्षा में आयु का विचार नहीं था। मैंने किसी भी दिन पढ़ने की पुस्तक निगली नहीं था, इसीलिए शारीरिक अथवा मानसिक अजीर्ण रोग मुझे भुगतना नहीं पड़ा। चूहा जिस तरह दाँत गढ़ाने योग्य वस्तु पाते ही उसे काट-कूट डालता है, फिर वह चाहे खाद्य हो और अखाद्य ही हो, बचपन से

ही उसी तरह छपी हुई पुस्तक देखते ही उसे पढ़ डालने का मेरा स्वभाव था। संसार में पढ़ने की पुस्तकों की अपेक्षा न पढ़ने की पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है, इसीलिए मेरी पुस्तकों के सौर-जगत में स्कूल-पाठ्य पृथ्वी की अपेक्षा बेस्कूल-पाठ्य सूर्य चौदह लाख गुना बड़ा था। फिर भी, मेरे संस्कृत-पंडित महाशय की निदारुण भविष्यवाणी के रहते हुए भी, मैं परीक्षा में पास हो गया।

मेरे पिता थे डिप्टी मैजिस्ट्रेट। उस समय हम लोग थे सातक्षीरा[१] में, किंवा जहानाबाद में किंवा इसी तरह की किसी एक जगह में। पहले से ही कह रखना अच्छा है, देश, काल एवं पात्र के सम्बन्ध में मेरे इस इतिहास में कोई स्पष्ट उल्लेख रहेगा, वह सभी सुस्पष्ट मिथ्या है; जिन लोगों को रसबोध की अपेक्षा कौतूहल अधिक है, उन्हें निराश होना पड़ेगा। पिताजी उस समय तहकीकात में निकल गये थे। माँ का एक व्रत था; दक्षिणा एवं भोजन-व्यवस्था के लिए उन्हें ब्राह्मण की आवश्यकता थी। इस तरह के पारमार्थिक प्रयोजन में हमारे पण्डितजी थे माँ के प्रधान सहायक। इसलिए माँ उनके समीप विशेष कृतज्ञ थीं, यद्यपि पिताजी के मन का भाव ठीक उससे उल्टा था।

आज भोजन के बाद दक्षिणा की जो व्यवस्था हुई, उसमें मैं भी तालिका-भुक्त (सूची में रखा गया) हुआ। उस सम्बन्ध में जो वार्त्तालाप हुआ था, उसका मर्म यही था—मेरा तो कलकत्ते के कॉलिज में जाने का समय हो गया था। ऐसी अवस्था में पुत्रविच्छेद-दु:ख दूर करने के लिए एक अच्छे उपाय का अवलम्बन करना कर्तव्य था। यदि एक शिशुबन्धु माँ की गोद के समीप रहे, तो उसे बड़ा करके, यत्न करके, उनका दिन कट सकता था। पण्डितजी की लड़की काशीश्वरी इस काम के लिए उपयुक्त थी—कारण, वह शिशु भी थी, सुशीला भी थी, और कुल शास्त्र के गणित से उसके साथ मेरा अंक-अंक मिलता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के कन्यादायमोचन का पारमार्थिक फल भी लोभ की सामग्री था।

---

१. नगरों के नाम।

माँ का मन विचलित हो गया। लड़की को एक बार देखना आवश्यक है, ऐसा आभास देते ही पण्डित जी ने कहा, उनका 'परिवार' कल रात में ही लड़की को लेकर मकान में आ पहुँचा है। माँ के, पसन्द होने में देर नहीं हुई। माँ बोलीं, लड़की सुलक्षणा है—अर्थात्, यथेष्ट परिमाण में सुन्दरी न होने पर भी सान्त्वना का कारण है।

बात होते-होते से मेरे कान में पड़ी। जिन पण्डितजी के धातु-रूप से बराबर डरता आया था, उन्हीं की कन्या के साथ मेरे विवाह का सम्बन्ध—इसीकी विसदृशता ने मेरे मन को पहले ही प्रबल वेग से आकर्षित कर लिया। रूपकथा की कहानी की भाँति हठात् सुवन्त-प्रकरण जैसे अपने समस्त अनुस्वार-विसर्ग को छोड़-छाड़ कर एकदम राजकन्या हो उठा।

एक दिन शाम को माँ ने मुझे अपने कमरे में बुलाकर कहा, "सनू, पण्डितजी के घर से आम और मिठाई आई है, खा देख।"

माँ जानती थीं, मुझे पच्चीस आम खा लेने देने पर और पच्चीस द्वारा उसकी पादपूर्ति करके ही मेरा छन्द मिलता था। इसीलिए उन्होंने रसना के सरस पथ से मेरा आह्वान किया। काशीश्वरी उनकी गोद में बैठी थी। स्मृति बहुत कुछ अस्पष्ट हो आई है, परन्तु याद है—रंगीन फीते से उसका जूड़ा बँधा हुआ था, और शरीर पर एक साटिन की जैकेट थी—वह नीली और लाल लेस और फीतों का एक प्रत्यक्ष प्रलाप थी। जहाँ तक याद आ रहा है—रंग साँवला, भौंहें खूब घनी एवं दोनों आँखें पालतू प्राणी की भाँति विना संकोच के ताक रही थीं। मुँह का बाकी अंश कुछ भी याद नहीं आ रहा—अस्पष्ट सा रह गया था। और कुछ भी हो, वह देखने में निहायत भली। आदमिन जैसी थी।

मेरी छाती भीतर से फूल उठी। मन ही मन समझा, यह फीते से बँधी वेणी वाली जैकेट पहिने हुए सामग्री सोलहोंआना मेरी है, मैं उसका स्वामी हूँ, मैं उसका देवता हूँ। अन्य सभी दुर्लभ सामग्रियों के लिये साधना करनी पड़ती है, केवल इसी एक वस्तु के लिए नहीं; मेरी छोटी उँगली हिलाने से ही हो जायगी, विधाता इसी वर को देने के लिए मुझे साधे फिर रहे हैं। माँ को जो मैं बराबर देखता आ रहा था, स्त्री के रूप में क्या समझा जा सकता

है, उसे अपने इसी सूत्र से जाना था। देखा था, पिताजी अन्य सभी व्रतों के ऊपर खफा थे, परन्तु सावित्री व्रत के समय वे मुँह से कुछ भी कहें, मन ही मन विशेष रूप से एक आनन्द का अनुभव करते थे। माँ उन्हें प्यार करती थीं, यह जानता था; परन्तु किससे पिताजी नाराज होंगे, किससे उन्हें विरक्ति होगी, इन सबसे माँ जो एकान्त मन से भय करती थीं, उसीके रस का पिताजी अपने सम्पूर्ण पौरुष से सबसे अधिक उपभोग करते थे। पूजा से देवताओं का शायद बड़ा कुछ आता-जाता नहीं, क्योंकि वह उनकी वैध मात्रा होती है। परन्तु मनुष्य का शायद वह अवैध प्राप्य होता है, इसीलिए इसके लोभ से उन्हें असावधान कर देता है। उस बालिका के रूप-गुण का आकर्षण उस दिन मेरे ऊपर नहीं पड़ा, परन्तु मैं पूजनीय हूँ, यह बात उस चौदह वर्ष की आयु में मेरे पुरखों के रक्त में उफन उठी। उस दिन खूब गौरव के साथ ही आमों को खाया। यही क्यों, गर्व के साथ तीन आम दोने में बाकी छोड़ दिये, जो मेरे जीवन में कभी नहीं हुआ था; एवं उसके बारे में सम्पूर्ण अपराह्ण काल सोचते हुए ही बीता।

उस दिन काशीश्वरी को पता नहीं चला कि मेरे साथ उसका सम्बन्ध किस श्रेणी का है—परन्तु घर जाते ही शायद जान गई। उसके बाद से जब भी उससे भेंट होती, वह घबराकर छिपने का स्थान भी नहीं ढूँढ़ पाती। मुझे देख कर उसकी यह त्रस्तता मुझे खूब अच्छी लगती। मेरा अविर्भाव संसार की किसी एक जगह में किसी एक आकार में खूब एक प्रबल प्रभाव का संचार करता है, यह जैव-रासायनिक तथ्य मेरे समीप बड़ा मनोरम था। मुझे देख कर भी कोई भय करता है अथवा लज्जा करता है, अथवा कोई एक-कुछ करता है, वह बड़ा अपूर्व था। काशीश्वरी अपने भागने के द्वारा ही मुझे जता जाती, संसार में वह विशेष भाव से, सम्पूर्ण भाव से एवं निगूढ़ भाव से मेरी ही है।

इतने समय की अकिञ्चित्करता से हठात् एक मुहूर्त में ऐसे एकान्त गौरव का पद प्राप्त करके कुछ दिनों तक मेरे माथे के भीतर रक्त झाँ-झाँ करने लगा। पिताजी जिस तरह से माँ के कर्तव्य की अथवा रसोई की अथवा व्यवस्था की त्रुटि को लेकर सर्वदा व्याकुल बनाये रहते थे, मैं भी मन ही

मन उसीकी तस्वीर के ऊपर चित्रकारी का अभ्यास करने लगा। बाबा के अनभिप्रेत किसी एक लक्ष्य का साधन करते समय माँ जिस तरह की सावधानी से अनेक प्रकार के मनोहर कौशल से काम का उद्धार करती थीं, मैं कल्पना में काशीश्वरी को भी उसी पथ पर प्रवृत्त होते हुए देखने लगा। बीच-बीच में मन ही मन उसे अकातरता से एवं अचानक ही मोटे अङ्क वाले बैंक नोट से आरम्भ करके हीरे के गहने तक दान करना आरम्भ कर दिया। किसी-किसी दिन भात खाने के लिए बैठने पर उसका खाना ही नहीं हुआ है एवं खिड़की के किनारे बैठकर आँचल के छोर से वह आँख का पानी पोंछ रही है, यह करुण दृश्य भी मैं मन की आँखों से देख सका एवं यह मेरे लिए अत्यन्त शोचनीय अनुभव हुआ था उसे नहीं कह सकता। छोटे बच्चों की आत्मनिर्भरता के सम्बन्ध में पिताजी अत्यन्त सतर्क थे। अपने कमरे को ठीक करना, अपने कपड़े-लत्तों को रखना, सभी कुछ मुझे अपने ही हाथों से करना पड़ता था। परन्तु, मेरे मन के भीतर गृहस्थी के जो चित्र स्पष्ट रेखाओं में उभर उठे थे, उनमें से एक नीचे लिखे देता हूँ। अधिक क्या कहा जाय, मेरे पैतृक इतिहास में ठीक इसी तरह की घटना पहले एक दिन घटी थी; इसी कल्पना में मेरी ओरजिनेलिटी कुछ भी नहीं थी। चित्र यह था—रविवार के मध्याह्न में भोजन के बाद मैं खाट के ऊपर तकिये का सहारा लेकर, पाँव फैलाये हुए अर्द्धनिद्रित अवस्था में समाचार पत्र पढ़ रहा था। हाथ में हुक्के की निगाली थी। ईषत् तन्द्रावेश में निगाली नीचे गिर पड़ी। बरामदे में बैठी हुई काशीश्वरी धोबी को कपड़े दे रही थी, मैंने उसे पुकारा; उसने झटपट दौड़ते हुए आकर मेरे हाथ में निगाली दे दी। मैंने उससे कहा, "देखो, मेरे बैठने के कमरे में बाईं ओर वाली आलमारी के तीसरे खाने में एक नीले रंग की जिल्द वाली मोटी अँग्रेजी की पुस्तक रखी है, उसे ले आओ तो।" काशी ने एक नीले रंग की पुस्तक ला दी; मैं बोला "आह, यह नहीं; वह इससे मोटी है, और उसकी पुश्त पर सुनहरे अक्षरों में नाम लिखा है।" इस बार वह एक हरे रंग की पुस्तक ले आई—उसे मैं धप् से फर्श के ऊपर पटक कर नाराज हो पड़ा। उस समय काशी का मुँह इतना-सा निकल आया एवं उसकी आँखें छलछला उठीं। मैंने जाकर देखा, तीसरे खाने में पुस्तक नहीं है, वह है पाँचवें

खाने में। पुस्तक को हाथ में लेकर चुपचाप बिछौने पर आ सोया, परन्तु काशी से भूल होने की बात कुछ नहीं कही। वह सिर झुकाये उदास होकर धोबी को कपड़े देने लगी एवं निर्बुद्धिता के दोष से पति के विश्राम में व्याघात किया, इस अपराध को किसी तरह भी नहीं भूल पाई।

पिताजी डकैती की तहकीकात कर रहे थे, और मेरे इस तरह से दिन बीत रहे थे। इधर मेरे बारे में पण्डित जी का व्यवहार और भाषा एक पल में कर्तृवाच्य से भाववाच्य में आ पहुँची और वह निरतिशय सद्भाववाच्य थी।

इसी बीच डकैती की तहकीकात खत्म हो गई, पिताजी घर लौट आये। मैं जानता था, माँ धीरे-धीरे समय देख कर घूम-फिर कर पिताजी की विशेष प्रिय सब्जी-रसोई के साथ-साथ थोड़ा-थोड़ा करके सहनीय बात उठा कर कहने के लिए प्रस्तुत होंगी। पिताजी पण्डितजी को अर्थलोलुप कह कर घृणा करते थे; माँ अवश्य ही पहले पण्डितजी की मृदु प्रकार से निन्दा अथच उनकी पत्नी और पुत्री की प्रचुर प्रकार से प्रशंसा करके बात को आरम्भ करतीं। परन्तु, दुर्भाग्यवश पण्डितजी की आनन्दित प्रगल्भता से बात चारों ओर फैल गई थी, विवाह पक्का ही है, दिन-क्षण देखे जा रहे हैं, यह बात उन्होंने किसी को भी जताये बिना नहीं रखी थी। इतना ही क्यों, विवाह के समय के लिये सरिश्तेदार बाबू के पक्के दालान की कुछ दिनों के लिए उन्हें आवश्यकता होगी, यथास्थान पर वह बात भी उन्होंने पक्की कर रखी थी। शुभ कर्म में सभी लोग उनकी यथा साध्य सहायता करने के लिए तैयार हो गये थे। पिताजी की अदालत के वकीलों का दल चन्दा करके विवाह का खर्च उठाने के लिए भी तैयार था। स्थानीय एन्ट्रेन्स स्कूल के सेक्रेटरी वीरेश्वर बाबू का तीसरा लड़का तीसरी क्लास में पढ़ता था, उसने चाँद और कुमुद के रूपक का आधार बनाकर, इसी बीच विवाह सम्बन्ध में त्रिपदी छन्द में एक कविता लिखी थी। सेक्रेटरी बाबू उस कविता को लेकर राह-घाट में जिसे पाते, उसी को पकड़-पकड़ सुनाने लगते थे। लड़के के सम्बन्ध में गाँव के लोग बड़े आशान्वित हो उठे थे।

सुतरां, लौटते ही बाहर के लोगों से ही पिताजी को शुभ-सम्वाद प्राप्त हो गया। उसके बाद माँ का रोना, घर के सब लोगों की भीतिविह्वलता,

नौकरों पर अकारण जुर्माना, इजलास में प्रबल वेग से मामलों का डिसमिस होना एवं प्रचण्ड तेज से दण्ड दिया जाना, पण्डितजी की पदच्युति एवं रेशमी फीते से बँधी वेणी के साथ काशीश्वरी को लेकर उनका अन्तर्ध्यान होना—एवं छुट्टियाँ समाप्त होने से पहले ही माता के संग से अलग करके मेरा जबर्दस्ती कलकत्ते को निर्वासन हुआ। मेरा मन फटी हुई फुटबॉल की तरह पिचक गया—आकाश-आकाश में, हवा के ऊपर उसकी उछल कूद एकदम बन्द हो गई।

— २ —

मेरे परिणय के मार्ग में आरम्भ से ही यह विघ्न हुआ—उसके बाद से मेरे दिन-प्रतिदिन प्रजापति का व्यर्थ पक्षपात होने लगा। उसका विस्तृत विवरण देने की इच्छा नहीं है—अपनी इस विफलता के इतिहास के दो-एक संक्षिप्त नोट छोड़ जाऊँगा। बीस वर्ष की आयु से पहले ही मैं पूरे संयम से एम०ए० परीक्षा पास करके आँखों पर चश्मा पहिन कर एवं मूँछ की रेखाओं को ताव देने योग्य करके निकल आया था। पिताजी उस समय रामपुर हाट किंवा नोआखाली, किंवा बारासत, किंवा इसी तरह की किसी जगह में थे। इतने दिन तो शब्द-सागर मन्थन करके डिग्री-रत्न प्राप्त किया गया था, इस बार अर्थ-सागर का मन्थन करने की बारी थी। पिताजी ने अपने बड़े-बड़े पैट्रन साहबों का स्मरण करने पर देखा, उनके जो सबसे बड़े सहायक थे वे तो परलोक में हैं, उनकी अपेक्षा जो कुछ कम थे, वे पेंशन लेकर विलायत में हैं, जो और भी कमजोर थे, वे पंजाब में स्थानान्तरित हो गये हैं, और जो बंगाल देश में बाकी हैं वे अधिकांशतः उम्मेदवारी की उपक्रमणिका में ही आश्वासन देते हैं, परन्तु उपसंहार में उसे समाप्त कर देते हैं। मेरे पितामह जिस समय डिप्टी थे, उस समय संरक्षकों का बाजार ऐसा कसा हुआ नहीं था, इसीलिए उस समय नौकरी से पेंशन एवं पेंशन से नौकरी एक ही वंश में नाव के आवागमन की तरह चलता रहता था। अब दिन खराब हैं, इसीलिए पिताजी जिस समय

उद्विग्न होकर सोच रहे थे कि उनके वंशज गवर्नमेंट आफिस के उच्च खाने से सौदागरी-आफिस के नीचे हिस्से में अवतरण करें या नहीं, इसी बीच एक धनी ब्राह्मण की एक मात्र कन्या उनके नोटिस में आई। ब्राह्मण कन्ट्रैक्टर थे, उनके अर्थागम का मार्ग प्रकट भूतल की अपेक्षा अदृश्य रसातल की ओर ही प्रशस्त था। वे उस समय में बड़े दिन के उपलक्ष्य में संतरे और अन्यान्य उपहार सामग्री यथायोग्य पात्रों को वितरण करने में व्यस्त थे, इसी बीच उनके मुहल्ले में मेरा अभ्युदय हुआ। पिताजी का मकान था, उनके मकान के समान ही, बीच में एक सड़क थी। अधिक क्या कहा जाय, डिप्टी का एम०ए० पास लड़का कन्यादायिक के लिए खूब 'प्रांशुलभ्य फल' था। इसीलिए कन्ट्रैक्टर बाबू मेरे प्रति 'उद्बाहु' हो उठे थे। उनकी भुजाएँ आधुलिलम्बित थीं, यह परिचय पहले ही दे चुका हूँ—अन्ततः वे भुजाएँ डिप्टी बाबू के हृदय तक अनायास ही पहुँच गईं। परन्तु, मेरा हृदय उस समय और भी बहुत ऊपर था।

कारण, मेरी आयु उस समय बीस के आस-पास थी; उस समय विशुद्ध स्त्री रत्न के अतिरिक्त अन्य किसी रत्न के प्रति मुझे कोई लोभ नहीं था। केवल यही नहीं, उस समय भी भावुकता की दीप्ति मेरे मन में उज्ज्वल थी। अर्थात् सहधर्मिणी शब्द का जो अर्थ मेरे मन में था, वह अर्थ बाजार में प्रचलित नहीं था। वर्तमान काल में हमारे देश में संसार चारों ओर से संकुचित है; मनन-साधन के समय मन को ज्ञान और भाव के उदार क्षेत्र में व्याप्त करके रखना और व्यवहार के समय उसे उस संसार के अत्यन्त छोटे माप में कृश करके लाना, यह मैं मन ही मन सहन नहीं कर पाता था। जिस स्त्री को आइडियल के मार्ग की संगिनी करना चाहता था, वह स्त्री घर-गृहस्थी की फौज में पाँव की बेड़ी होकर रहे एवं प्रत्येक चलने फिरने की झंकार से पीछे की ओर खींचे रहे, ऐसा दुराग्रह स्वीकार कर लेने में मुझे नाराजगी थी। असल बात यह है, हमारे देश के प्रहसन में जो लोग आधुनिक के रूप में विद्रूप करके कॉलिज से नये-नये निकले होते है, मैं उसी तरह का निरवच्छिन्न आधुनिक हो उठा था। हमारे समय में वह आधुनिकों का दल हम समय की अपेक्षा बहुत अधिक था। आश्चर्य यही था कि वे लोग सचमुच विश्वास

करते थे कि समाज को मान कर चलने में दुर्गति है एवं उसे अपने पीछे खींच कर चलाने में उन्नति है।

यह था मैं श्रीयुत सनत्कुमार, एक बलशाली कन्या के पिता की रुपयों से भरी हुई थैली के सामने आ पड़ा। पिताजी बोले, शुभस्य शीघ्रम्। मैं चुप बना रहा, मन ही मन सोचा, जरा देख-सुन-समझ सोच लूँ। आँख-कान खुले रखे—परन्तु थोड़ा सा देखा और बहुत-सा सुना गया। लड़की गुड़िया की तरह छोटी और सुन्दर है—वह स्वाभाविक नियम से तैयार हुई है, ऐसा उसे देखकर नहीं लगता—न जाने किसने उसके प्रत्येक बाल को सँवारकर, उसकी भौहों को आँककर, उसे हाथ में लेकर बनाया है। वह संस्कृत भाषा में गङ्गा की स्तुति को आवृत्ति करती हुई पढ़ सकती है। उसकी माँ पत्थर के कोयले तक गङ्गाजल से धोने के बाद रसोई बनाती है; जीवधात्री वन्सुधरा नाना जातियों को धारण करती हैं, ऐसा कहा जाता है, परन्तु पृथ्वी से संस्पर्श के सम्बन्ध में वे सदैव संकुचित रहती हैं; उनका अधिकांश व्यवहार पानी के साथ ही रहता है, कारण, जलचर मछलियाँ मुसलमान-वंशीय नहीं हैं एवं जल में प्यास उत्पन्न नहीं होती। उनके जीवन का सर्वप्रधान कार्य अपने शरीर को, घर को, कपड़े-लत्ते, हाँड़ी-मटकी, खाट-पलंग, बासन-कूसन का शोधन एवं मार्जन करना है। उन्हें सब कृत्य समाप्त करने में ढाई बज जाया करते हैं। अपनी लड़की को उन्होंने अपने हाथों से ऐसा परिशुद्ध किया है कि उसका निजी मत अथवा निजी इच्छा नामक कोई उत्पात नहीं है। किसी व्यवस्था में कितनी ही असुविधा हो, उसका पालन करना उनके लिए सहज होता है, यदि उसका कोई संगत कारण उसे न समझा दिया जाय। वह भोजन के समय अच्छे कपड़े नहीं पहनती कि पीछे सकरे हो जायेंगे। उसने छाया के बारे में भी विचार करना सीखा है। वह जिस तरह पालकी के भीतर बैठ कर ही गंगा-स्नान करती है, उसी तरह अठारह पुराणों की सीमा के भीतर रह कर ही संसार में चलती-फिरती है। विधि-विधान के ऊपर मेरी माँ की भी यथेष्ट श्रद्धा थी, परन्तु उनसे भी और अधिक श्रद्धा और किसी में भी रहे और उसी कारण वह मन ही मन घमण्ड करे, इसे वे सहन नहीं कर पाती थीं। इसीलिए

मैंने जब उनसे कहा "माँ, इस लड़की के योग्य पात्र मैं नहीं हूँ," उन्होंने हँसकर कहा, "नहीं, कलियुग में वैसा पात्र मिलना कठिन है।"

मैं बोला, "तो फिर मैं विदा लेता हूँ।"

माँ बोलीं, "यह क्या, सुनू, तुझे पसन्द नहीं आई ? क्यों, लड़की तो देखने में अच्छी है।"

मैं बोला, "माँ, स्त्री केवल टकटकी लगाकर देखने के लिए तो नहीं होती, उसमें बुद्धि भी तो होनी चाहिए।"

माँ बोलीं, "सुनूँ तो सही। इसी बीच तूने उसकी कम बुद्धि का परिचय कैसे पा लिया ?"

मैं बोला, "बुद्धि रहने पर मनुष्य दिन-रात इन सब निरर्थक अकामों में बचा ही नहीं रह सकता। घबरा कर मर जायेगा।"

माँ का मुँह सूख गया। वे जानती थीं, इस विवाह के बारे में पिताजी ने दूसरे पक्ष को प्रायः पक्का वचन दे दिया है। वे यह भी जानती थीं कि पिताजी प्रायः यह भूल जाते हैं कि दूसरे मनुष्य में भी इच्छा नामक एक बला रह सकती है। वस्तुतः, पिताजी यदि अत्यन्त अधिक नाराजगी, जबर्दस्ती न करते तो शायद कालक्रम से इस पौराणिक पुतली से विवाह करके मैं भी किसी दिन प्रबल जिद से स्नान, आह्निक एवं व्रत-उपवास करते-करते गंगा तट पर सद्गति प्राप्त कर लेता। अर्थात्, माँ के ऊपर यदि इस विवाह को करने का भार होता तो वे समय लेकर, अत्यन्त धीर मन्द सुयोग में क्षण-क्षण पर कान में मन्त्र देकर, क्षण-क्षण पर अश्रुपात करके, काम का उद्धार कर ले सकती थीं। पिताजी जब केवल गर्जन-तर्जन करने लगे, मैंने उनसे मुर्दे जैसा बन कर कहा, "बचपन से ही खाते-सोते चलते-फिरते में मुझे आत्मनिर्भरता का उपदेश दिया गया है, केवल विवाह के समय ही क्या आत्मनिर्भर नहीं रह सकूँगा ?" कॉलिज में लॉजिक पास करते समय के अतिरिक्त न्याय शास्त्र के जोर से किसी ने किसी भी दिन सफलता प्राप्त की हो, यह मैंने नहीं देखा है। संगत-युक्ति कुतर्क की अग्नि में कभी भी पानी की तरह काम नहीं करती, अपितु तेल की तरह ही काम करती रहती है। पिताजी ने सोच रखा था, उन्होंने दूसरे पक्ष को वचन दिया है, विवाह के औचित्य के सम्बन्ध में इससे

अधिक बड़ा प्रमाण और कुछ भी नहीं है। अथच, यदि मैं उन्हें स्मरण करा देता कि, पंडितजी को माँ ने भी एक दिन वचन दिया था, फिर भी उस बात से केवल मेरा विवाह ही रुक गया हो वही नहीं, पण्डितजी की जीवका भी उसीके साथ ही सहमरण को प्राप्त हो गई—तब तो इस बारे में एक फौजदारी छिड़ जाती। बुद्धि-विचार एवं रुचि की अपेक्षा शुचिता मन्त्र-तन्त्र क्रिया-कर्म बहुत अधिक अच्छे होते हैं, उनका कवित्व सुगम्भीर और सुन्दर है, उनकी निष्ठा अत्यन्त महान् है, उनका फल अति उत्तम होता है, सिम्बौलिज्म ही आइडियलिज्म है, ये बातें पिताजी आजकल मुझे सुना-सुनाकर समय-असमय में कहते रहते थे। मैंने जीभ को रोक रखा था, परन्तु मन को तो चुप करके नहीं रख सका। जो बात मुँह के आगे पास आकर लौट जाती थी, वह यही थी कि 'इन सबको यदि आप मानते हैं तो पालन करते समय मुर्गी क्यों पालते हैं?' और भी एक बात याद आती थी; पिताजी ने ही एक दिन पाल-पार्वण, विधि-निषेध, दान-दक्षिणा के कारण अपनी असुविधा अथवा हानि होने से माँ को कठोर भाषा में इन सब अनुष्ठानों के पाखण्ड को लेकर ताड़ना दी थी। माँ उस समय दीनता स्वीकार करते हुए, 'अबला जाति स्वभाव से ही ना-समझ होती है' कहकर, सिर झुकाकर, नाराजगी के धक्के को काटते हुए, ब्रह्मभोज के विस्तृत आयोजन में प्रवृत्त हो गई थीं। परन्तु, विश्वकर्मा लॉजिक के पक्के साँचे में ढाल कर जीवों का सृजन नहीं करते। अतएव किसी मनुष्य को 'बात और कार्य में संगति नहीं है', यह कहकर, उसे चुप नहीं किया जा सकता, केवल नाराज किया जा सकता है। न्यायशास्त्र की दुहाई देने पर अन्याय की प्रचण्डता बढ़ जाती है—जो लोग पोलिटिकल अथवा गार्हस्थ्य ऐजीटेशन में श्रृद्धावान हैं, उन्हें यह बात याद रखनी उचित है। घोड़ा जब अपने पीछे लगी हुई गाड़ी को अन्याय समझ कर उस पर लातें चलाता है, उस समय अन्याय तो बना ही रहता है, बीच में से उसके पाँवों को भी जख्मी कर देता है। यौवन के आवेग में जरा सा तर्क कर देने से मेरी वही दशा हुई। पौराणिकी लड़की के हाथ से रक्षा तो अवश्य मिल गई, परन्तु पिताजी के आधुनिक युग की वसीयत का आश्रय भी खो दिया। पिताजी बोले, "जाओ, तुम आत्मनिर्भर बनो।"

मैंने प्रणाम करके कहा, "जो आज्ञा।"

माँ बैठी-बैठी रोने लगीं।

पिताजी का दायाँ हाथ विमुख अवश्य हो गया, परन्तु बीच में से माँ के रहते हुए क्षण-क्षण पर मनीआर्डर वाले पियादे से भेंट होने लगी। बादल ने वर्षा बन्द कर दी, परन्तु गुप्त-रूप से स्निग्धरात्रि में शिशिर का अभिषेक चलने लगा। उसीके बल पर व्यापार शुरू कर दिया। ठीक उनासी रुपयों से प्रारम्भ हुआ। आज उसी कारबार में जो मूलधन लग रहा है, वह ईर्ष्याकातर जनश्रुति की अपेक्षा बहुत कम होने पर भी, बीस लाख रुपये से कम नहीं है।

प्रजापति के प्यादे मेरे पीछे-पीछे फिरने लगे। पहले जो सब द्वार बन्द थे, अब उनकी रुकावट नहीं रही। याद है, एक दिन यौवन की दुर्निवार दुराशा में एक षोड़शी के प्रति (आयु के अंक इस जगह निष्ठावान पाठकों के भय से कुछ सहनीय करके कहे हैं) अपने हृदय को उन्मुख किया था, परन्तु खबर मिली, कन्या का मातृपक्ष सिविलियन के प्रति लक्ष्य किये हुए है—अन्ततः बैरिस्टर से एक नीचे उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। मैं उनके मनोयोग-मीटर के ज़ीरोपॉइन्ट से नीचे था। परन्तु, बाद में उसी घर में एक और दिन केवल चाय ही नहीं, लंच खाया था, रात में डिनर के बाद लड़कियों के साथ व्हीस्ट खेला था, उनके मुँह से विलायत के एकदम खास महल की अंग्रेजी भाषा की बातचीत सुनी थी। मेरी मुश्किल यही थी कि रैसेलस, डेपार्टेड, विलेज एवं ऐडीसन स्टील पढ़कर मैंने अंग्रेजी में निपुणता प्राप्त की थी, इन लड़कियों के साथ होड़ करना मेरा काम नहीं था। O my, O dear आदि उद्‌भाषण मेरे मुँह से ठीक सुर में नहीं निकलना चाहते थे। मुझ पर जितनी विद्या थी, उससे मैं अत्यन्त आधुनिक अंग्रेजी भाषा में बड़े जोर से हाट-बाजार में खरीद-बिक्री कर सकता था, परन्तु बीसवीं शताब्दी की अंग्रेजी में प्रेमालाप करने की बात याद करके मेरा प्रेम ही भाग जाता था। अथच, इन लोगों के मुँह में बंगला भाषा का जैसा अकाल था, उससे इन लोगों के साथ शुद्ध बंकिमि सुर में मधुरालाप करने में रुकना पड़ता था। उससे मजदूरी कम मिलती। तो जो भी हो, ये सब विलायती-पालिश की हुई लड़कियाँ एक दिन मेरे लिए सुलभ हो गई थीं। परन्तु, बन्द दरवाजे की

फाँक में से जो मायापुरी देखी थी, दरवाजा जब खुला उस समय फिर उसका पता नहीं चला, उस समय मुझे केवल याद आने लगा, वह·जो मेरी व्रतचारिणी निरर्थक नियमों की निरन्तर पुनरावृत्ति के घुमाव में दिन-रात घूम-घूमकर अपनी जड़-बुद्धि को तृप्ति करती थी। यह लड़कियाँ भी ठीक उसी बुद्धि को लेकर विलायती चाल-चलन, अदब-कायदों के समस्त तुच्छातितुच्छ उपसर्गों की प्रदशिणा करती हुई दिन के बाद दिन, वर्ष के बाद वर्ष, अनायास ही अक्लान्त-चित्त से काटे दे रही हैं। वे जिस प्रकार छाया और स्नान का लेश मात्र स्खलन देखकर अश्रद्धा से कण्टकित हो उठती हैं, ये भी उसी तरह एक्सेण्ट के एक दाग किंवा काँटे-चम्मच के अल्प विपर्यय को देखकर ठीक उसी तरह से अपराधी मनुष्यत्व के सम्बन्ध में संदिग्ध हो उठती हैं। वे लोग देशी पुतली हैं, ये लोग विदेशी पुतली हैं। मन की गति के वेग से ये लोग नहीं चलतीं, अभ्यास के दम देने वाले यन्त्र से ये लोग चलती हैं। फल यही हुआ कि स्त्री-जाति के ऊपर मुझे मन ही मन अश्रद्धा हो गई; मैंने निश्चित किया, उन लोगों में बुद्धि जब कम है, तब स्नान-उपवास के अकर्म-काण्ड प्रकाण्ड न होने पर वे लोग बचेंगी किस तरह! पुस्तक में पढ़ा था, एक तरह के जीवाणु हैं, वे क्रमागत सिमटते रहते हैं। परन्तु, मनुष्य सिमटता नहीं है, मनुष्य चलता है। उन जीवाणुओं के परिवर्तित संस्करण के साथ ही क्या विधाता ने अभागे पुरुष के विवाह का सम्बन्ध बना डाला है।

इस ओर आयु जितनी बढ़ चली, विवाह के बारे में द्विधा भी उतनी ही बढ़ उठी। मनुष्य की एक आयु होती है, जब वह विचार किये बिना भी विवाह कर सकता है। उस आयु के निकल जाने पर विवाह करने के लिए दुस्साहसिकता की आवश्यकता होती है। मैं उस बेपरवाह दल का आदमी नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त कोई प्रकृतिस्थ लड़की बिना कारण के एक निश्वास में मुझसे क्यों विवाह कर डालेगी, मैं तो किसी तरह भी नहीं सोच पाया। सुना है, प्यार अन्धा होता है, परन्तु इस जगह उस अन्धे के ऊपर तो कोई भार नहीं है। सांसारिक-बुद्धि की दो आँखों के अतिरिक्त और भी अधिक आँखें होती हैं, वे आँखें जब बिना नशे के मेरी ओर ताक कर देखती हैं,

उस समय मेरे भीतर क्या देख पाती हैं, मैं उसीको सोचता हूँ। मुझमें अवश्य ही अनेक गुण हैं, परन्तु उन सबको तो पकड़ने में देर लगती है, एक दृष्टि में ही नहीं समझे जा सकते। मेरी नाक में जो कमी है, बुद्धि की उन्नति ने उसे पूर्ण कर दिया है, यह जानता हूँ; परन्तु नाक ही तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है और भगवान ने बुद्धि को निराकार ही कर रखा है। कुछ भी हो, जब देखता हूँ कोई बालिग लड़की अत्यल्प काल के नोटिस पर ही मुझ से विवाह करने में अत्यल्पमात्र आपत्ति नहीं करत तब स्त्रियों के प्रति मेरी श्रद्धा और भी कम हो जाती है। मैं यदि लड़की होता तो श्रीयुत सनत्कुमार की अपनी ही छोटी नाक के दीर्घ निश्वास से उसकी आशा एवं अहंकार धूलिसात् हो जाता।

इस तरह से मेरे विवाह की खाली नौका बीच-बीच में रेतीले टापुओं पर रुकती थी, परन्तु घाट पर नहीं आ पाती थी। स्त्री के अतिरिक्त संसार के अन्यान्य उपकरण व्यवसाय की उन्नति के साथ बढ़ चलने लगे। एक बात भूल गया, आयु भी बढ़ रही थी। अचानक एक घटना ने यह बात याद दिला दी।

अभ्रक की खान की खोज में छोटा नागपुर के एक शहर में जाकर देखा, पंडित जी उस जगह शालवन की छाया में एक छोटी-सी नदी के किनारे सुन्दर मकान बनाकर रह रहे हैं। उनके लड़के उस जगह काम करते थे। उसी शालवन के कोने में मेरा तम्बू गढ़ा था। इस समय देश भर में मेरे धन की ख्याति फैली हुई थी। पंडितजी बोले—समय आने पर मैं असाधारण व्यक्ति बन जाऊँगा, इसे वे पहले ही जानते थे। सो होगा, परन्तु आश्चर्यजनक रूप से छिपाये रहे थे। इसके अतिरिक्त किस लक्षण द्वारा जान लिया था, वह तो कह ही नहीं सकता। लगता है, असाधारण लोगों को छात्रावस्था में षत्वणत्वज्ञान रहीं रहता। काशीश्वरी ससुराल में थी, इसीलिए बिना बाधा के मैं पण्डितजी के घर का आदमी बन बैठा। कई वर्ष पूर्व उन्हें पत्नी-वियोग हो गया था—परन्तु वे नातिनियों से घिरे रहते थे। सभी उनकी अपनी नहीं थीं, उनमें से दो उनके परलोकगत बड़े भाई की थीं। वृद्ध इन सबको लेकर अपने वार्धक्य के अपराह्ण को अनेक रंगों में रंगीन बनाये रहते थे। उनके

अमरुशतक, आर्या सप्तशती, हंसदूत, पदांकदूत के श्लोकों की धारा झाड़ी के चारों ओर पहाड़ी नदी के फेनाच्छल प्रवाह की भाँति इन लड़कियों को घेरे हुए हास्यपूर्वक ध्वनित हो उठती थी।

मैंने हँसकर कहा, "पण्डितजी मामला क्या है ?"

वे बोले, "बेटा, तुम लोगों के अंग्रेजी शास्त्र में कहते हैं कि शनिग्रह चन्द्रमाओं की माला पहने रहता है—यह मेरी वही चन्द्रमा की माला है।"

उस दरिद्र घर का यह दृश्य देखकर अचानक मुझे याद आ गया, मैं अकेला हूँ। समझ सका, मैं अपने भार से स्वयं ही क्लान्त होकर पड़ा हुआ हूँ। पण्डितजी नहीं जानते कि उनकी आयु हो चुकी है, परन्तु मेरा जो हुआ है, उसे मैं स्पष्ट रूप से जान गया। आयु हो गई है, कहने पर यही समझ में आता है, अपने चारों ओर को छोड़ आया हूँ, चारों ओर ढील पड़ कर फाँक हो गई है। वह फाँक रुपयों से, ख्याति से नहीं भरी जा सकती। पृथ्वी से रस नहीं पा रहा हूँ, केवल वस्तु-संग्रह कर रहा हूँ, यह व्यर्थता अभ्यासवश भूली रहती है। परन्तु, पण्डितजी के घर को जब देखा, उस समय समझा, मेरे दिन सूखे हैं, रातें सूनी हैं। पण्डितजी निश्चित रूप से ठीक किये बैठे हैं कि मैं उनकी अपेक्षा भाग्यवान पुरुष हूँ—यह बात सोचकर मुझे हँसी आ गई। इस वस्तु जगत् को घेरे हुए एक अदृश्य आनन्द लोक है। उस आनन्द लोक के साथ हमारे जीवन का योगसूत्र न रहने से हम लोग त्रिशंकु की भाँति शून्य में बने रहते हैं। पण्डितजी को वह योग था, मुझे नहीं था, यही अन्तर है। मैं आराम कुर्सी के दोनों हत्थों पर दोनों पाँव रख कर सिगरेट पीते-पीते सोचने लगा, पुरुष के जीवन के चार आश्रमों के चार अधिदेवता होते हैं, बाल्यावस्था में माँ, युवावस्था में पत्नी, प्रौढ़ावस्था में पुत्री, बुढ़ापे में नातिनी, पौत्र बधू। इस प्रकार स्त्रियों के बीच रह कर पुरुष अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। इस तत्व ने मर्मरित शालवन में मुझे आविष्ट कर लिया—देखकर अपनी निरतिशय नीरसता से हृदय हाहाकार कर उठा। इस मरु-मार्ग के बीच में होकर मुनाफे का बोझ कन्धों पर लिये हुए कहाँ जाकर मुँह औंधा करके, गिर कर मर जाना पड़ेगा ! और देर करने से तो नहीं चलेगा। सम्प्रति, चालीस की आयु हो चुकी है—यौवन की आखिरी थैली को झाड़

लेने के लिए पचास की आयु सड़क के किनारे पर बैठी हुई है, उसकी लाठी की नौक इस जगह से दिखाई दे रही है। अब जेब की बात बन्द रखकर जीवन की बात को जरा सोच देखा जाय। परन्तु, जीवन का जो अंश मुल्तबी पड़ा हुआ है, उस अंश में और तो लौट पाना चलेगा नहीं। फिर भी उसकी छिन्नता में ताली लगाने का समय अभी पूर्ण रूप से नहीं बीता है।

यहाँ से काम की गति को पश्चिम के एक शहर में जाना पड़ा। उस जगह विश्वपति बाबू धनी बंगाली महाजन थे। उन्हीं से मेरे काम की बात थी। आदमी बड़े होशियार थे, सुतरां उनके साथ कोई बात पक्की करने में बहुत समय लगता था। एक दिन विरक्त होकर जब सोच रहा था, 'इन्हें लेकर मेरे काम में सुविधा नहीं होगी'; यही क्यों, नौकर से अपने चीज बस्त को पैक करने के लिए भी कह दिया, तभी विश्वपति बाबू सन्ध्या के समय आकर मुझसे बोले, "आपके साथ अवश्य ही अनेक प्रकार के लोगों की बातचीतें चल रही होंगी, आप जरा मनोयोग करें तो एक विधवा बच जायेगी।"

घटना यह थी—

नन्दकृष्ण बाबू बरेली में पहली बार आये थे, एक बंगाली-अंग्रेजी स्कूल के हैडमास्टर होकर। काम बहुत अच्छा किया था। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ—ऐसे सुयोग्य सुशिक्षित व्यक्ति देश छोड़कर इतनी दूर, सामान्य वेतन पर नौकरी करने आये किस कारण से ? केवल परीक्षा पास कराने में ही उनकी ख्याति हो, ऐसा नहीं था, सभी अच्छे कार्यों में उन्होंने हाथ लगाया था। इसी बीच न जाने किस तरह प्रकट हो गया कि उनकी स्त्री रूपवान है परन्तु अच्छे कुल की नहीं है; किसी साधारण जाति की स्त्री है, यही क्यों, उसकी छूत लगते ही पीने के पानी की पानीयता एवं अन्यान्य निगूढ़ सात्विक गुण भी नष्ट हो जाता है। जब सभी लोगों ने उन्हें दबाया, तब वे बोले—हाँ, जाति में छोटी अवश्य है, फिर भी वह उनकी पत्नी है। उस समय प्रश्न उठा, ऐसा विवाह वैध कैसे होगा ? जिन्होंने प्रश्न किया था, नन्दकृष्ण बाबू ने उनसे कहा, "आपने तो शालिग्राम को साक्षी करके एक के बाद एक दो स्त्रियों से विवाह किया है, एवं द्विवचन से भी सन्तुष्ट नहीं हैं, इसके भी बहुत से प्रमाण दे दिये हैं। शालिग्राम की बात मैं नहीं कह सकता

परन्तु अन्तर्यामी जानते हैं, मेरा विवाह आपके विवाह की अपेक्षा वैध है, प्रतिदिन प्रति मूहूर्त में वैध है—इसकी अपेक्षा अधिक बात मैं आप लोगों के साथ नहीं करना चाहता।"

नन्दकृष्ण ने जिनसे ये बातें कहीं थीं वे प्रसन्न नहीं हुए। इससे भी अधिक, लोगों का अनिष्ट करने की क्षमता भी उनमें अधिक थी। सुतरां, उस उपद्रव से नन्दकृष्ण बाबू ने बरेली छोड़कर, इस वर्तमान शहर में आकर वकालत शुरू कर दी। आदमी बड़े खरे थे—भूखे रहने पर भी झूठे मुकद्दमों को वे बिलकुल नहीं लेते थे। पहले-पहल इससे उन्हें जितनी भी असुविधा हुई हो, अन्त में उन्नति होने लगी; क्योंकि हाकिम लोग उन पर पूर्णरूप से विश्वास करते थे। एक मकान बनाकर जरा जम कर बैठे ही थे कि उन्हीं दिनों देश में अकाल पड़ा। देश उजाड़ हो गया। जिनके ऊपर सहायता बाँटने का भार था, उनमें से कोई-कोई चोरी कर लेता था, यह बात जब उन्होंने मजिस्ट्रेट को बताई तो मजिस्ट्रेट ने कहा, "भले आदमी मिलते कहाँ हैं ?"

वे बोले, "मुझ पर यदि विश्वास करें तो मैं इस काम का बहुत कुछ भार ले सकता हूँ।"

उन्हें भार मिला एवं उस भार को वहन करते-करते ही एक दिन मध्याह्न में मैदान के बीच एक वृक्ष के नीचे मर गये। डाक्टर ने कहा—उनके हृत्पिण्ड की क्रिया बन्द होकर मृत्यु हो गई है।

कहानी का इतना हिस्सा मुझे पहले से ही मालूम था। उच्च भावों वाला मस्तिष्क कैसा होता है, इस विषय पर चर्चा करते हुए, इसी कहानी का उल्लेख करके अपनी क्लब में मैंने कहा था, "इन्हीं नन्दकृष्ण जैसे व्यक्ति, जो कि संसार में फेल होकर सूखकर मर गये—न नाम रखा, न रुपये रखे—ये ही लोग भगवान के सहयोगी होकर संसार को ऊपर की ओर—"

जरा सा कहते ही, भरे पाल की नौका के अचानक रेतीले टापू से ठिठक जाने की भाँति, मेरी बातचीत बीच में ही बन्द हो गई। कारण, हम लोगों में से खूब एक सम्पत्ति और प्रतिपत्तिशाली व्यक्ति समाचार-पत्र पढ़ रहे

थे—वे अपने चश्मे के ऊपर से मेरे ऊपर दृष्टि डालते हुए बोल उठे थे, "हियर, हियर !"

जाने दो। सुना गया, नन्दकृष्ण की विधवा स्त्री अपनी एक लड़की को लेकर इसी मुहल्ले में रहती हैं। दिवाली की रात में लड़की का जन्म हुआ था, अतः पिता ने उसका नाम रखा था दीपाली। विधवा ने किसी समाज में स्थान न पाने के कारण सम्पूर्ण रूप से अकेली ही रहकर इस लड़की को पढ़ना-लिखना सिखा कर बड़ा किया था। इस समय लड़की की आयु पच्चीस से ऊपर होगी, माँ का शरीर रुग्ण है और आयु भी कम नहीं है—किसी दिन वे मर जायेंगी, इस लड़की की कहीं भी कोई गति नहीं होगी, विश्वपति ने मुझसे विशेष अनुनय करके कहा, "यदि इसके लिए पात्र जुटा सकें तो यह एक पुण्यकर्म होगा।"

मैंने विश्वपति की शुष्क, स्वार्थपर, केवल अपने काम में ही लगा रहने वाला व्यक्ति समझ कर मन ही मन अवज्ञा की थी, विधवा की अनाथ लड़की के लिए उनके इस आग्रह को देखकर मेरा मन द्रवित हो गया। सोचा, प्राचीन पृथ्वी के मृत मैमथ के पाक यन्त्र के भीतर से खाद्य बीज बाहर निकाल कर देखा गया है कि उसमें से अंकुर निकल रहे हैं—उसी तरह मनुष्य का मनुष्यत्व विपुल मृतस्तूप के भीतर रहते हुए भी सम्पूर्ण रूप से मरना नहीं चाहता।

मैंने विश्वपति से कहा, "पात्र मेरा परिचित है, कोई बाधा नहीं पड़ेगी, आप लोग बात एवं दिन निश्चित कर लीजिए।"

"परन्तु लड़की को देखे बिना तो और—"

"बिना देखे ही होगा।"

"परन्तु, पात्र यदि सम्पत्ति का लोभी हो तो वह बहुत अधिक नहीं है। माँ के मर जाने पर केवल यह मकान ही मिलेगा, और सामान्य कुछ भी यदि हो तो मिल जायेगा।"

"पात्र के पास अपनी सम्पत्ति है, उसके लिए चिन्ता नहीं करनी होगी।"

"उनका नाम विवरण प्रभृति—"

"वह इस समय नहीं बताऊँगा, अन्यथा जान-पहिचान होकर विवाह में रुकावट पड़ सकती है।"

"लड़की की माँ से तो उसके बारे में कुछ कहना पड़ेगा।"

"कह दीजिएगा, आदमी अन्य साधारण मनुष्यों की तरह गुण-दोषमय है। दोष इतना अधिक नहीं है, जो चिन्ता करनी पड़े; गुण भी इतना अधिक नहीं है जो लालच किया जा सके। मैं जहाँ तक जानता हूँ, उससे कन्याओं के माता-पिता उसे विशेष पसन्द करते हैं, स्वयं कन्याओं की बात ठीक से नहीं जानी जा सकती।"

विश्वपति इस मामले में जब अत्यन्त कृतज्ञ हुए, तब उनके ऊपर मेरी भक्ति बढ़ गई। जो कारबार इससे पहले उनके साथ मेरे भाव पर नहीं बन रहा था, उसमें नुकसान देकर भी रजिस्ट्री के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कर देने के लिए मुझे उत्साह हो आया। वे जाते समय बोले, "पात्र से कह दीजिएगा, अन्य सब विषयों में कुछ भी हो, ऐसी गुणवती लड़की कहीं नहीं मिल सकेगी।"

जो लड़की समाज के आश्रय से एवं श्रद्धा से वंचित है, उसे यदि हृदय के ऊपर प्रतिष्ठित किया जायगा, तो क्या वह लड़की स्वयं को उत्सर्ग करने में तनिक भी कृपणता करेगी ? जिस लड़की की बड़ी-बड़ी आशाएँ रहती हैं, उसीकी आशाओं का अन्त नहीं होता। परन्तु, यह दीपाली दीपक की मिट्टी से बनी है, अतः मेरे जैसे मिट्टी के बने घर के कोने में उसकी शिखा अमर्यादित नहीं होगी।

सन्ध्या के समय रोशनी जला कर अंग्रेजी अखबार पढ़ रहा था। इसी समय खबर आई, एक लड़की मेरे साथ भेट करने आई है। घर में कोई स्त्री नहीं थी, इसीलिए घबरा गया। किसी भद्र उपाय के सोचने से पहले ही लड़की ने घर के भीतर घुसते हुए प्रणाम किया। बाहर से कोई विश्वास नहीं करेगा, परन्तु मैं अत्यन्त शर्मीला मनुष्य हूँ। मैंने न तो उसके मुँह की ओर देखा, न कोई बात कही। वह बोली, "मेरा नाम दीपाली है।"

गला बहुत मीठा था। साहस करके मुँह उठाकर देखा, वह मुख बुद्धि की कोमलता से ओत-प्रोत था, सिर पर घूँघट नहीं था—सादा देशी कपड़े, आजकल की फैशन से परे। क्या कहूँ, यह सोच रहा था कि इसी समय वह बोली, "मेरा विवाह करने के लिए आप कोई प्रयत्न मत कीजिएगा।"

और कुछ भी हो, दीपाली के मुँह से ऐसी आपत्ति की मैंने प्रत्याशा ही नहीं की थी। मैंने सोच रखा था, विवाह के प्रस्ताव से उसकी देह, मन, प्राण कृतज्ञता से भर उठे होंगे।

जिज्ञासा की—"परिचित-अपरिचित किसी भी पात्र से तुम विवाह नहीं करोगी ?"

वह बोली, "नहीं, किसी भी पात्र से नहीं।"

यद्यपि मनस्तत्व की अपेक्षा वस्तुतत्व में ही मेरी अधिक अभिज्ञता थी—विशेषत: नारीचित्त मेरे लिए बंगला-रचना की अपेक्षा कठिन था, फिर भी बात के साधारण अर्थ को मैं सच्चे अर्थ के रूप में नहीं जान सका। मैं बोला, "जिस पात्र को मैंने तुम्हारे लिए ढूंढ़ा है, वह अवज्ञा करने योग्य नहीं है।"

दीपाली बोली, "मैं उनकी अवज्ञा नहीं करती, परन्तु मैं विवाह नहीं करूँगी।"

मैं बोला, "वह व्यक्ति भी तुम्हारी मन से श्रद्धा करता है।"

"परन्तु, नहीं, मुझसे विवाह करने के लिए मत कहिएगा।"

"अच्छा, नहीं कहूँगा, परन्तु मैं क्या तुम लोगों के किसी काम में नहीं आ सकता हूँ ?"

"मुझे यदि किसी लड़कियों के स्कूल में पढ़ाने के काम में लगाकर इस जगह से कलकत्ते ले चलें तो भारी उपकार होगा।"

बोला, "काम है, लगा दे सकूँगा।"

यह तो सम्पूर्ण सत्य बात नहीं थी। लड़कियों के स्कूल की खबर मैं क्या जानूँ। परन्तु लड़कियों के स्कूल की स्थापना करने में तो दोष नहीं है।

दीपाली बोली, "आप हमारे घर आकर एक बार माँ के साथ इस बात की चर्चा कर देखेंगे ?"

मैं बोला, "मैं कल सुबह ही आऊँगा।"

दीपाली चली गई। मेरा अखबार पढ़ना बन्द हो गया। छत के ऊपर निकल कर चौकी पर बैठ गया, सितारों से जिज्ञासा की, 'कोटि-कोटि योजन दूर रह कर तुम लोग क्या सचमुच ही मनुष्य के जीवन के समस्त कर्म-सूत्र एवं सम्बन्ध-सूत्रों को चुपचाप बैठे-बैठे बुनते रहते हो ?'

इसी बीच कोई खबर दिये बिना अचानक ही विश्वपति का मँझला लड़का श्रीपति छत पर आ उपस्थित हुआ। उसके साथ जो चर्चा हुई, उसका मर्म यही था—

श्रीपति दीपाली से विवाह करने के लिए समाज का त्याग करने को प्रस्तुत है। पिता कहते हैं, ऐसा दुष्कार्य करने पर वे उसे त्याग देंगे। दीपाली कहती है, उसके लिए इतने बड़े दुःख, अपमान और त्याग को कोई स्वीकार करे, ऐसी योग्यता उसमें नहीं है। इसके अतिरिक्त श्रीपति बचपन से धनी घर में पला है; दीपाली की राय में वह समाजच्युत एवं निराश्रय होकर दरिद्रता के कष्ट को सहन नहीं कर सकेगा। इसीको लेकर तर्क चल रहा है, किसी तरह भी उसकी मीमांसा नहीं हो पा रही है। ठीक इसी संकट के समय मैंने बीच में गिरकर इन लोगों के बीच एक दूसरे पात्र को खड़ा करके समस्या की जटिलता को अत्यन्त बढ़ा दिया है। इसीलिए श्रीपति मुझे इस नाटक में से प्रूफ-शीट के कटे हुए अंश की तरह हट जाने को कह रहा है।

मैं बोला, "जब आ ही पड़ा हूँ, तब हटूंगा नहीं। और, यदि हटूंगा ही तो गाँठ काटने के बाद ही हटूँगा।"

विवाह का दिन परिवर्तित नहीं हुआ। केवल मात्र पात्र-परिवर्तन हुआ। विश्वपति के अनुनय की रक्षा की थी, परन्तु उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। दीपाली के अनुनय की रक्षा नहीं की, परन्तु भावों से लगा कि वह सन्तुष्ट हो गई है। स्कूल में काम खाली था या नहीं सो नहीं जानता, परन्तु मेरे घर में कन्या का स्थान खाली था, वह भर गया। मेरे जैसे व्यर्थ आदमी भी निरर्थक नहीं होते, मेरे धन से ही इसे श्रीपति के समीप प्रमाणित कर दिया। उसका गृह-दीप मेरे कलकत्ते के मकान में ही जला। सोचा था,

समयानुसार विवाह न कर पाने की मुल्तबी को असमय में विवाह करके पूर्ण करना पड़ेगा, परन्तु देखा, ऊपर वाले के प्रसन्न होने पर दो-एक क्लास में डिग जाने पर भी प्रमोशन मिल जाता है। आज पचपन वर्ष की आयु में मेरा घर कन्याओं से भर गया है, परन्तु एक पुत्र भी मिल गया है। परन्तु, विश्वपति बाबू के साथ मेरा कारोबार बन्द हो गया है—कारण, उन्होंने पात्र को पसन्द नहीं किया है।

नामंजूर गल्प

हमारी महफिल जमी थी पोलिटिकल लङ्काकाण्ड की बारी में। वर्तमान अमलदारी के उत्तरकाण्ड में हम लोगों ने सम्पूर्णरूप से छुट्टी नहीं पाई थी, परन्तु कण्ठ अवरुद्ध हो गया था, इसके अतिरिक्त वह अग्निदाह का खेल बन्द हो गया था।

बङ्गभङ्ग[1] की बङ्गभूमि से विद्रोही का अभिनय शुरू हुआ। सभी जानते हैं, इस नाटक के पञ्चम अङ्क का दृश्य अलीपुर[2] को पार कर पहुँच गया था अण्डमान[3] के समुद्र तट पर। पार उतरने के महसूल का पाथेय मेरे पास बहुत था, फिर भी ग्रहों के गुण से इस पार की हिरासत में ही मेरी भोग समाप्ति थी। सहयोगियों में से फाँसी के तख्ते तक जिनका सर्वोच्च प्रमोशन हुआ था, उन्हें

---

१. अंग्रेजों द्वारा किया गया बंगाल का विभाजन।
२. कलकत्ते की एक प्रसिद्ध जेल।
३. वह द्वीप जहाँ कालेपानी (देश निकाला) की सजा के लिए भारत के कैदियों को अंग्रेजी राज्य के समय में भेजा जाता था।

प्रणाम करके मैं पश्चिमी भारत के एक शहर के कोने में होम्योपैथी-चिकित्सा का फैलाव जमा बैठा था।

उस समय मेरे पिता जीवित थे। वे थे बंगाल देश के एक बड़े महकमे के सरकारी वकील। उपाधि थी रायबहादुर। उन्होंने जरा विशेष रूप से तूफान खड़ाकर मेरा घर आना बन्द कर दिया। उनके हृदय के साथ मेरा सम्बन्ध विच्छिन्न हुआ था या नहीं, इसे अन्तर्यामी जानते हैं, परन्तु जेब के साथ हो गया था। मनीआर्डर का सम्पर्क तक नहीं था। जिस समय मैं हिरासत में था, उसी समय माँ की मृत्यु हो गई थी। मेरे प्राप्य की सजा उन्हीं के साथ चली गई।

मेरी बुआ के रूप में जो प्रसिद्ध थीं, वे मेरी स्वोपार्जित हैं, किंवा मेरी पैतृक हैं, इस विषय को लेकर किसी-किसी के मन में सन्देह है। उसका कारण है, मेरे पश्चिम में जाने से पहले उनके साथ मेरा सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप से अव्यक्त था। वे मेरी कौन हैं, इस विषय को लेकर सन्देह रहे तो बना रहे, परन्तु उनका स्नेह मिले बिना उस आत्मीयता की अराजकता के समय में मुझे बड़ा दुःख उठाना पड़ता। उन्होंने पूरा जीवन पश्चिम में ही बिताया था; उसी जगह विवाह, उसी जगह वैधव्य। उसी जगह पति की जमीन-जायदाद थी। विधवा उसीको लेकर सीमित थीं।

उनका एक और भी बन्धन था। कन्या पति की अवश्य थी, पत्नी की नहीं। उसकी माँ थी एक युवती दासी, जाति की कहार। पति की मृत्यु के बाद लड़की का उन्होंने घर में लाकर पालन किया था—वह जानती भी नहीं थीं कि वे उसकी माँ नहीं हैं।

ऐसी अवस्था में उनका एक और बन्धन बढ़ गया, वह था मैं स्वयं। जिस समय जेलखाने से बाहर मेरा स्थान अत्यन्त सङ्कीर्ण था, उस समय इन विधवा ने ही मुझे अपने घर में एवं हृदय में आश्रय दिया। उसके बाद पिताजी के देहान्त का जब पता चला, वसीयत में उन्होंने मुझे सम्पत्ति से वंचित नहीं किया, उस समय सुख-दुःख से मेरी बुआ की आँखों से पानी बह उठा। समझ लिया, मेरे लिए उनकी आवश्यकता समाप्त हो गई है। इसी कारण स्नेह तो समाप्त नहीं हो गया।

वे बोलीं, "बेटा, जहाँ भी रहो, मेरा आशीर्वाद साथ रहेगा।"

मैं बोला, "वह तो रहेगा ही, उसके साथ तुम्हें भी रहना पड़ेगा, अन्यथा मेरा काम नहीं चलेगा। हिरासत से निकल कर जिस माँ को दुबारा नहीं देख सका, वे ही मुझे रास्ता दिखाकर तुम्हारे पास ले आई हैं।"

बुआ अपने इतने समय की घर-गृहस्थी को उठा कर मेरे साथ कलकत्ता चली आईं। मैंने हँस कर कहा, "तुम्हारी स्नेह-गंगा की धारा को पश्चिम से पूर्व में वहन करके लाया हूँ, मैं कलियुग का भागीरथ हूँ।"

बुआ हँस गईं और आँखों का पानी पोंछ लिया। उनके मन में कुछ द्विधा भी हुई, बोलीं, "बहुत दिनों से इच्छा थी, लड़की की कोई एक गति करके अन्तिम आयु में तीर्थ यात्रा करती फिरूँगी—परन्तु, बेटा, आज तो उसके उल्टे रास्ते पर खिंची चली जा रही हूँ।"

मैं बोला, "बुआ, मैं ही तुम्हारा सचल तीर्थ हूँ। किसी भी त्याग के क्षेत्र में तुम आत्मदान क्यों न करो, उसी जगह तुम्हारे देवता स्वयं आकर उसे ग्रहण कर लेंगे। तुम्हारी आत्मा पवित्र जो है।"

सबसे अधिक एक युक्ति उनके मन में प्रबल हो उठी। उन्हें आशङ्का थी, स्वभावतः मेरी प्रवृत्ति का बहाव अण्डमान की ओर है, अतएव कोई मुझे सँभालने वाला न रहने पर, अन्त में एक दिन पुलिस के बाहु-बन्धन में आबद्ध हो ही जाऊँगा। उनका मतलब था, जो कोमल बाहु-बन्धन उनकी अपेक्षा बहुत अधिक कठिन और स्थायी है, उसीकी व्यवस्था कर देने पर वे तीर्थ-भ्रमण के लिए बाहर निकलेंगी। मेरा बन्धन हुए बिना उनकी मुक्ति नहीं है।

मेरे चरित्र के बारे में इस जगह गलत हिसाब लगा लिया। जन्म-पत्र में मेरे वध-बन्धन के ग्रह अन्त में मुझे शकुनी-गृधिनी के हाथ में सौंप देने में नाराज नहीं थे, परन्तु प्रजापति के हाथ में नैव नैव च। कन्या के पिताओं ने त्रुटि नहीं की, उनकी संख्या भी अजस्र थी। मेरी पैतृक सम्पत्ति की विपुल सच्छलता की बात सभी जानते थे, इच्छा करते ही सम्भावित श्वसुर को दिवालिया बनाकर कन्या के साथ-साथ बीस-पच्चीस हजार रुपये नौबत-शहनाई बजवा कर हँसते-हँसते अदा करवा सकता था। किया नहीं। मेरे भावी

चरित्र-लेखक इस बात को स्मरण रक्खें कि स्वदेश-सेवा के संकल्प के समीप एक समय में मैंने इन बीस-पच्चीस हजार रुपयों का त्याग किया था। जमा खर्च के अङ्क अदृश्य-स्याही से लिखे हुए हैं कहकर मेरी प्रशंसा के हिसाब में कमी न रखें। पितामह भीष्म के साथ मेरे महान् चरित्र का इसी जगह मेल है।

बुआ ने अन्त तक आशा नहीं छोड़ी, इस समय में भारत के पोलिटिकल आकाश में हमारे उस छात्रयुग के परवर्ती युग की हवा बही। पहले ही कह चुका हूँ, इस समय हम लोग प्रधान नायक नहीं थे, फिर भी फुट-लाइन के बहुत पीछे बीच-बीच में निस्तेज भाव से हम लोगों का आना-जाना चलता था। इतना निस्तेज कि बुआ मेरे सन्बन्ध में निश्चिन्त ही थीं। मेरे लिए कालीघाट में स्वस्त्ययन कराने की इच्छा किसी समय उन्हें थी, परन्तु इदानीम् मेरे भाग्य-आकाश में लाल-पगड़ी के रक्तमेघ एकदम अदृश्य रूप से रह रहे हैं, इसका उन्हें ख्याल नहीं रहा। यही भूल कर दी।

उस दिन पूजा के बाजार में थी खद्दर की पिकेटिंग। नितान्त केवल दर्शक की भाँति ही गया था—मेरे उत्साह की ताप-मात्रा ९८ अङ्क से नीचे थी, नाड़ी में अधिक वेग नहीं था। उस दिन मुझे किसी आशङ्का का कारण हो सकता था, यह खबर मेरे जन्म-पत्र के नक्षत्रों के अतिरिक्त और सभी से अगोचर थी। इसी समय खद्दर प्रचारकारिणी किसी बंगाली महिला को पुलिस-सॉर्जन ने धक्का दिया। पल भर में ही मेरे अहिंसक असहयोग के भाव प्रबल दुःसहयोग में परिणित हो गये। सुतरां तुरन्त ही थाने में मेरी गति हुई। उसके बाद यथा नियम हिरासत की लालायित गोद में से जेलखाने के अँधेरे के जठर देश में अवतरण किया गया। बुआ से कह गया, "इस बार कुछ समय के लिए तुम्हारी मुक्ति है। आपातत मेरे लिए उपयुक्त अभिभावक का अभाव नहीं रहा है, अतएव इस सुयोग में तुम तीर्थ-भ्रमण कर लो। अमियाँ कॉलिज के होस्टल में रहेगी; मकान में भी देखने-सुनने वाले लोग हैं; अतएव, इस समय तुम देव-सेवा में सोलह आना मन लगा दोगी तो देव-दानव किसी को भी कोई आपत्ति की बात नहीं रहेगी।"

जेलखाने को जेलखाना समझ कर ही गिन लिया था। उस जगह कोई दावा-अधिकार, आबदार, उत्पात नहीं किया। उस जगह सुख, सम्मान, सौजन्य, सुहृदय और सुखाद्य के अभाव में अत्यन्त चकित नहीं हुआ, कठोर नियमों को कठोर भाव से ही मान लिया था। किसी तरह की आपत्ति करना ही लज्जा की बात मान ली थी।

अवधि समाप्त होने से कुछ पहले ही छुट्टी मिल गई। चारों ओर खूब तालियाँ बजीं। मन को लगा जैसे बंगाल देश की हवा में गूँज रहा है, 'एन्कोर ! एक्सेलेण्ट !' मन खराब हो गया। सोचा जिसने भोगा उसीने भोगा—और, मिष्टान्नमितरेजनाः, रस मिला पूरे देश को। वह भी अधिक देर तक नहीं; नाट्य-मंच पर पर्दा पड़ जाता है, प्रकाश बुझ जाता है, उसके बाद भूलने की बारी आती है। केवल बेड़ी-हथकड़ी के दाग जिसकी हड्डियों में जा लगे होते हैं, उसी को चिर दिनों तक स्मरण रहता है।

बुआ अभी तक तीर्थ में थीं। कहाँ—उसका ठिकाना भी नहीं जानता था। इसी बीच पूजा (दुर्गापूजा) का समय समीप आ गया। एक दिन सन्ध्या के समय मेरे सम्पादक-मित्र आ उपस्थित हुए। बोले, "अजी, पूजा-विशेषाङ्क के लिए एक रचना चाहिए।"

जिज्ञासा की, "कविता ?"

"अरे नहीं। तुम्हारा जीवन-वृत्तान्त !"

"वह तो तुम्हारे एक अङ्क में आ नहीं पायेगा।"

"एक अङ्क में क्यों। क्रमशः निकलेगा।"

"सती की मृत देह को सुदर्शन चक्र से टुकड़े-टुकड़े करके काट डाला गया था। मेरा जीवन-चरित्र सम्पादकी के चक्र से टुकड़े-टुकड़े कर अङ्क-अङ्क में बिखरा दिया जायगा, यह मुझे पसन्द ही नहीं है। जीवनी यदि लिखूँ तो सम्पूर्ण रूप में एक साथ प्रकाशित करो।"

"न हो तो अपने जीवन की किसी एक विशेष घटना को लिख दो न।"

"कैसी घटना ?"

"तुम्हारी सबसे अधिक कठोर अभिज्ञता, जिसमें खूब उग्रता हो।"

चरित्र-लेखक इस बात को स्मरण रक्खें कि स्वदेश-सेवा के संकल्प के समीप एक समय में मैंने इन बीस-पच्चीस हजार रुपयों का त्याग किया था। जमा खर्च के अङ्क अदृश्य-स्याही से लिखे हुए हैं कहकर मेरी प्रशंसा के हिसाब में कमी न रखें। पितामह भीष्म के साथ मेरे महान् चरित्र का इसी जगह मेल है।

बुआ ने अन्त तक आशा नहीं छोड़ी, इस समय में भारत के पोलिटिकल आकाश में हमारे उस छात्रयुग के परवर्ती युग की हवा बही। पहले ही कह चुका हूँ, इस समय हम लोग प्रधान नायक नहीं थे, फिर भी फुट-लाइन के बहुत पीछे बीच-बीच में निस्तेज भाव से हम लोगों का आना-जाना चलता था। इतना निस्तेज कि बुआ मेरे सन्बन्ध में निश्चिन्त ही थीं। मेरे लिए कालीघाट में स्वस्त्ययन कराने की इच्छा किसी समय उन्हें थी, परन्तु इदानीम् मेरे भाग्य-आकाश में लाल-पगड़ी के रक्तमेघ एकदम अदृश्य रूप से रह रहे हैं, इसका उन्हें ख्याल नहीं रहा। यही भूल कर दी।

उस दिन पूजा के बाजार में थी खद्दर की पिकेटिंग। नितान्त केवल दर्शक की भाँति ही गया था—मेरे उत्साह की ताप-मात्रा ९८ अङ्क से नीचे थी, नाड़ी में अधिक वेग नहीं था। उस दिन मुझे किसी आशङ्का का कारण हो सकता था, यह खबर मेरे जन्म-पत्र के नक्षत्रों के अतिरिक्त और सभी से अगोचर थी। इसी समय खद्दर प्रचारकारिणी किसी बंगाली महिला को पुलिस-सॉर्जन ने धक्का दिया। पल भर में ही मेरे अहिंसक असहयोग के भाव प्रबल दुःसहयोग में परिणित हो गये। सुतरां तुरन्त ही थाने में मेरी गति हुई। उसके बाद यथा नियम हिरासत की लालायित गोद में से जेलखाने के अँधरे के जठर देश में अवतरण किया गया। बुआ से कह गया, "इस बार कुछ समय के लिए तुम्हारी मुक्ति है। आपातत मेरे लिए उपयुक्त अभिभावक का अभाव नहीं रहा है, अतएव इस सुयोग में तुम तीर्थ-भ्रमण कर लो। अमियाँ कॉलिज के होस्टल में रहेगी; मकान में भी देखने-सुनने वाले लोग हैं; अतएव, इस समय तुम देव-सेवा में सोलह आना मन लगा दोगी तो देव-दानव किसी को भी कोई आपत्ति की बात नहीं रहेगी।"

जेलखाने को जेलखाना समझ कर ही गिन लिया था। उस जगह कोई दावा-अधिकार, आबदार, उत्पात नहीं किया। उस जगह सुख, सम्मान, सौजन्य, सुहृदय और सुखाद्य के अभाव में अत्यन्त चकित नहीं हुआ, कठोर नियमों को कठोर भाव से ही मान लिया था। किसी तरह की आपत्ति करना ही लज्जा की बात मान ली थी।

अवधि समाप्त होने से कुछ पहले ही छुट्टी मिल गई। चारों ओर खूब तालियाँ बजीं। मन को लगा जैसे बंगाल देश की हवा में गूँज रहा है, 'एन्कोर ! एक्सेलेण्ट !' मन खराब हो गया। सोचा जिसने भोगा उसीने भोगा—और, मिष्टान्नमितरेजनाः, रस मिला पूरे देश को। वह भी अधिक देर तक नहीं; नाट्य-मंच पर पर्दा पड़ जाता है, प्रकाश बुझ जाता है, उसके बाद भूलने की बारी आती है। केवल बेड़ी-हथकड़ी के दाग जिसकी हड्डियों में जा लगे होते हैं, उसी को चिर दिनों तक स्मरण रहता है।

बुआ अभी तक तीर्थ में थीं। कहाँ—उसका ठिकाना भी नहीं जानता था। इसी बीच पूजा (दुर्गापूजा) का समय समीप आ गया। एक दिन सन्ध्या के समय मेरे सम्पादक-मित्र आ उपस्थित हुए। बोले, "अजी, पूजा-विशेषाङ्क के लिए एक रचना चाहिए।"

जिज्ञासा की, "कविता ?"

"अरे नहीं। तुम्हारा जीवन-वृत्तान्त !"

"वह तो तुम्हारे एक अङ्क में आ नहीं पायेगा।"

"एक अङ्क में क्यों। क्रमशः निकलेगा।"

"सती की मृत देह को सुदर्शन चक्र से टुकड़े-टुकड़े करके काट डाला गया था। मेरा जीवन-चरित्र सम्पादकी के चक्र से टुकड़े-टुकड़े कर अङ्क-अङ्क में बिखरा दिया जायगा, यह मुझे पसन्द ही नहीं है। जीवनी यदि लिखूँ तो सम्पूर्ण रूप में एक साथ प्रकाशित करो।"

"न हो तो अपने जीवन की किसी एक विशेष घटना को लिख दो न।"

"कैसी घटना ?"

"तुम्हारी सबसे अधिक कठोर अभिज्ञता, जिसमें खूब उग्रता हो।"

"लिख कर क्या होगा ?"

"लोग जानना चाहते हैं जी !"

"इतना कौतूहल है ? अच्छा, ठीक है, लिखूंगा।"

"याद रहे कि सबसे अधिक जो तुम्हारा कठोर अनुभव हो।"

"अर्थात्, जिसके कारण सबसे अधिक दुःख पाया हो, लोगों को उसी में सबसे अधिक मजा आयेगा ? अच्छा, ठीक है। परन्तु, नामों को बहुत कुछ बदल देना पड़ेगा।"

"वह तो होगा ही ! जो एक दम मारात्मक बात है, उसके इतिहास का चिह्न बदले बिना मुसीबत पड़ेगी। मैं उसी तरह की मरीया-वृत्त की वस्तु ही चाहता हूँ। प्रति पृष्ठ तुम्हें—"

"पहले रचना को देखो, उसके बाद मोल-भाव होगा।"

"परन्तु, और किसी को नहीं दे सकोगे, कहे देता हूँ। जो जितनी भी कीमत देंगे, मैं उससे अधिक—"

"अच्छा, अच्छा, वही होगा।"

अन्त में उठकर जाते समय कहते गये, "तुम्हारे ये—समझ रहे हो ? नाम नहीं लूँगा—यही जो तुम्हारे साहित्य-धुरन्धर हैं—अपने को बड़ा लेखक कहते फिरते हैं—परन्तु, कुछ भी कहो, तुम्हारे स्टाइल के सामने उनका स्टाइल जैसे डासन के बूट और तालतले की चप्पल है।"

समझ गया कि मुझे ऊपर चढ़ा देने का उपलक्ष्य मात्र है, तुलना में धुरन्धर को नीचा ठहरा देना ही लक्ष्य है।

यह गई मेरी भूमिका। इस बार मेरे कठोर अनुभव की कहानी है।

'सन्ध्या' अखबार जिस दिन से पढ़ना आरम्भ किया था, उसी दिन से आहार-विहार के सम्बन्ध में मेरा कड़ा भोग था। उसे जेलयात्रा की रिहर्सल कहा जा सकता था। शरीर के प्रति अनादर का अभ्यास पक्का हो उठा। इसीलिए पहली बार जब हिरासत में ठेला गया, प्राणपुरुष विचलित नहीं हुआ। उसके बाद बाहर आकर अपने ऊपर किसी की सेवा-शुश्रूषा का हस्तक्षेप मात्र बर्दाश्त नहीं करता था। बुआ दुःख अनुभव करतीं। उनसे

कहता, "बुआ, स्नेह में मुक्ति, सेवा में बन्धन है।" इसके अतिरिक्त किसी के शरीर के लिये शरीरधारी का कानून मेहनत करने को कहता है, डाइयार्की, द्वैराज्य—उसके विरोध में हम लोगों का असहयोग है।

वे निश्वास छोड़कर कहतीं, "अच्छा बेटा, तुम्हें नाराज नहीं करूँगी।"

निर्बोध, मन ही मन सोचता कि मुसीबत टल गई।

भूल गया था, स्नेह सेवा का एक प्रच्छन्न रूप है। उसकी माया से बचना कठिन है। अकिंचन शिव जिस समय अपनी भिक्षा की झोली को लेकर दरिद्रता के गौरव में मग्न रहते हैं, उस समय उन्हें यह खबर नहीं रहती कि लक्ष्मी ने किसी समय में उसे कोमल रेशम से बुना था, उसके सुनहरे धागों के मूल्य के बदले सूर्य-नक्षत्र भी बिक जायेंगे। जिस समय 'भीख का अन्न खा रहा हूँ' कहकर संन्यासी निश्चिन्त थे, उस समय यह नहीं जानते थे कि अन्न-पूर्णा ने उसे ऐसे मसालों से बनाया है कि देवराज इन्द्र भी प्रसाद पाने के लिए नन्दी के कान में चुपचाप फिस-फिस कर रहे थे। मेरी वही दशा हुई। सोने, वस्त्र पहनने, भोजन करने में बुआ की सेवा का हाथ गुप्त रूप से इन्द्रजाल का विस्तार करने लगा, वह देशात्मबोधी की अन्यमनस्क आँखों को दिखाई नहीं दिया। मन ही मन निश्चित किये बैठा था, तपस्या अक्षुण्ण चल रही है। जेलखाने में जा कर तन्द्रा भंग हुई। बुआ की और पुलिस की व्यवस्था के बीच एक अन्तर है, किसी तरह की अद्वैत बुद्धि द्वारा उसका समन्वय नहीं कर सका। मन ही मन केवल गीता को दुहराने लगा—निस्त्रैगुण्योभवार्जुन। हाय रे तपस्वी, किस समय बुआ के अनेक गुण अनेक उपकरणों के संयोग से हृदय देश को पार कर एकदम पाक यन्त्र में प्रवेश करते थे, इसे जान भी नहीं पाया। जेलखाने में आकर उस जगह पर विपाक (विपत्ति) होने लगा।

फल यही हुआ कि वज्राघात के अतिरिक्त और किसी तरह से शरीर पर काबू हुए बिना वह अस्वस्थ हो गया। जेल के प्यादों ने चाहे छोड़ दिया था, जेल के रोगों की म्याद समाप्त नहीं होना चाहती थी। कभी सिर दूखने लगता, हजम प्रायः होता ही नहीं, सन्ध्या के समय ज्वर बना रहता। क्रमशः

जब माला, चन्दन, तालियाँ फीकी हो आईं, उस समय यह मुसीबतें टीस मारने लगीं।

मन ही मन सोचता, बुआ तो तीर्थ करने गई हैं, इसी कारण अमियाँ को धर्मज्ञान नहीं रहा है। परन्तु दोष किसे दूँ? इससे पहले बीमारी वगैरह में मेरी सेवा करने के लिए बुआ ने उसे अनेक बार उत्साहित किया था—मैंने ही बाधा देते हुए कहा था, अच्छा नहीं लगता।

बुआ ने कहा था, "अमियाँ की शिक्षा के लिए ही कहती हूँ, तेरे आराम के लिए नहीं।"

मैंने कहा, "अस्पताल में नर्सिंग करने भेज दो न।"

बुआ ने नाराज होकर फिर जवाब नहीं दिया।

आज लेटा-लेटा मन ही मन सोच रहा हूँ, 'चाहे एक समय मना ही किया है, पर क्या उसी कारण उस बाधा को माने ही रहना पड़ेगा। गुरुजन के आदेश पर इतनी निष्ठा, इस कलियुग में!'

साधारणतः पास के संसार के छोटे-बड़े अनेक मामले देशात्मबोधी की आँख से ओझल ही बने रहते हैं। परन्तु, बीमार पड़े होने के कारण आजकल दृष्टि प्रखर हो गई थी। लक्ष्य किया, मेरी अनुपस्थिति में अमियाँ का देशात्मबोध भी पहले की अपेक्षा बहुत अधिक प्रबल हो उठा है। इससे पूर्व मेरे दृष्टान्त और शिक्षा में उसकी इतनी अभावनीय उन्नति नहीं हुई थी। आज असहयोग के असह्य आवेग से वह कॉलिज-त्यागनी हो गई है; भीड़ में खड़ी हो कर भाषण देने में भी उसका हृदय नहीं धड़कता; अनाथालय के चन्दे के लिए अपरिचित व्यक्ति के घर में जा कर भी वह झोली फैलाये घूमती है। यह भी लक्ष्य करके देखा, अनिल उसके इस कठिन अध्यवसाय को देख कर उसे देवी कह कर भक्ति करता है—उसके जन्म-दिवस पर उसी भाव का एक मुक्त-छन्द का स्तोत्र उसने सुनहरी स्याही में छपवाकर, उसे उपहार में दिया था।

मुझे भी इसी तरह का कुछ बनाना पड़ेगा, अन्यथा असुविधा हो रही है। बुआ के जमाने में नौकर-चाकर यथा नियम से काम करते थे, हाथ के

पास कोई न कोई मिल ही जाता था। अब एक गिलास पानी की जरूरत होने पर भी अपने मेदिनीपुरवासी श्रीमान जलधर के अकस्मात् आगमन की प्रतीक्षा में चातक की भाँति देखता रहता हूँ; समय मिलने पर औषधि खाने के सम्बन्ध में अपने ही भुलक्कड़ मन के ऊपर एक मात्र भरोसा है। अपने चिर दिनों के नियम-विरुद्ध होने पर भी रोग-शैया पर हाजिरी देने के लिए अमियाँ को दो-एक बार बुलवाया था; परन्तु देखा कि पाँवों का शब्द सुनते ही वह दरवाजे की ओर चौंक कर देखती, केवल खुस-पुस करती रहती। मन में दया आती; कहता, "अमियाँ, आज अवश्य ही तुम लोगों की मीटिंग है।"

अमियाँ कहती, "सो हो न दादा, अभी और कुछ देर—"

मैं कहता, "नहीं, नहीं, ऐसा कैसे होगा। कर्तव्य सबसे पहले है।"

परन्तु, प्रायः ही देख पाता, कर्तव्य से बहुत पहले ही अनिल आ उपस्थित होता। उससे अमियाँ के कर्तव्य-उत्साह के पाल में जैसे जोर की हवा लगती, मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना पड़ता।

केवल अनिल ही नहीं, विद्यालय-वर्जक और भी अनेक उत्साही युवक मेरे मकान की पहली मंजिल में शाम के समय चाय एवं इन्सपिरेशन ग्रहण करने को एकत्र होते। वे सभी अमियाँ को युगलक्ष्मी कह कर सम्भाषण करते। एक तरह की पदवी होती है, जैसे रायबहादुर, तह की हुई चद्दर की भाँति, जिसे भी दी जाती है वह बिना चिन्ता के कन्धे पर डाले हुए घूम सकता है और एक दूसरी तरह की पदवी भी होती है, वह जिसके भाग्य में जुटती है, वह बेचारा स्वयं को पदवी के साथ उतना ही बड़ा बनाने के लिए रात-दिन उत्कण्ठित बना रहता है। स्पष्ट देखा, अमियाँ की वही हालत है। सदैव ही अत्यन्त अधिक उत्साह प्रदीप्त हुए बिना रहना उसे नहीं आता। खाते-सोते समय उसे समय न मिल पाना ही विशेष समारोह के साथ दिखाना पड़ता है। इस मुहल्ले में उस मुहल्ले में खबर पहुँचती है। कोई जब कहता है कि शरीर किस तरह से टिकेगा, वह जरा-सा हँस जाती है—आश्चर्यजनक होती है वह हँसी। भक्त लोग कहते हैं 'अब जरा-विश्राम कीजिए न, किसी तरह से काम को हम कर ही लेंगे।' वह इससे क्षुण्ण हो जाती है—थकान से बचना ही क्या बड़ी बात है! दुःख के गौरव से वंचित रहना क्या कम विडम्बना है!

उसके त्याग-स्वीकार की लिस्ट में मैं भी पड़ गया हूँ। मैं जो उसका इतना बड़ा जेलभोगी दादा हूँ—उल्लास कर, कन्हाई, वारीन, उपेन्द्र आदि के साथ एक नक्षत्र मण्डली में जिसका स्थान है, गीता के द्वितीय अध्याय से पार होकर उसका जो दादा गीता के अन्तिम अध्याय की ओर मुँह करके अग्रसर हो रहा है, उसे भी यथोचित परिमाण में देखने का समय उसे नहीं मिलता। इतनी बड़ी सैक्रीफाइस, जिस दिन किसी कारण से उसके दल के लोगों का अभाव हो गया था, उस दिन मैंने भी उसके उत्साह के नियमित नशे को जगाने के लिए कहा था, 'अमियाँ, व्यक्तिगत मनुष्य के साथ सम्बन्ध तेरे लिए नहीं है, तेरे लिए वर्तमान युग है।' मेरी बात को उसने गम्भीर मुख से चुपचाप मान लिया था। जेलखाने के बाद से मेरी हँसी अन्तःशीला बहा करती थी—जो लोग मुझे पहिचानते नहीं, वे लोग बाहर से मुझे खूब गम्भीर ही समझा करते थे।

बिछौने पर अकेला पड़ा-पड़ा कड़ी-काठ की ओर देखता-देखता सोचता; विमुखा बान्धवा यान्ति। अचानक याद आ गया, उस दिन कहीं से एक देसी कुत्ते ने आकर मेरे बरामदे के कोने में आश्रय ढूँढ़ा था। शरीर के रोयें खड़े हुए थे, जीर्ण चमड़े के नीचे कङ्काल नहीं ढँक पा रहा था—उसकी हालत अधमरी हो रही थी। अत्यन्त घृणा के साथ उसे दुरदुराकर भगा दिया था। आज सोचता हूँ, इतनी अधिक उग्रता के साथ उसे क्यों भगाया। बेगाना कुत्ता होने के कारण नहीं, उसके सर्वाङ्ग में मरण दशा देखने के कारण से ही। प्राण की सङ्गीत-सभा में उसका अस्तित्व बेसुरा था, उसकी रुग्णता बेअदबी थी। उसके साथ अपनी तुलना मन में आई। चारों ओर के चलायमान प्राणों की धारा में मेरा अस्वास्थ्य एक स्थावर पदार्थ है, स्रोत की बाधा है। वह दावा करता है, 'सिरहाने के पास चुपचाप बैठे रहो।' प्राण का दावा है, 'दिशा विदिशाओं में घूमते फिरो।' रोग के बन्धन से जो स्वयं बद्ध है वह निरोगी को बन्दी करना चाहता है—यही एक अपराध है। अतएव, जीवलोक के ऊपर सम्पूर्ण दावे को त्याग दूँगा—यह सोचकर गीता खोल बैठा। प्रायः जिस समय स्थित-धी अवस्था में आ पहुँचा था, मन रोग-अरोग के द्वन्द्व को छोड़ गया था, उसी समय आँखें झुका कर देखा, बुआ की पौष्यमण्डली की

एक स्त्री थी। अब तक दूर रह कर ही साधारण भाव से उसे जानता था; विशेषभाव से उसका परिचय नहीं जानता था—उसका नाम तक मुझे अविदित था। माथे पर घूँघट खींचे हुए धीरे-धीरे वह मेरे पाँवों पर हाथ फिराने लगी।

उस समय याद आया, बीच-बीच में वह मेरे दरवाजे के बाहर कोने में छाया की भाँति आकर बार-बार लौट गई है। शायद, साहस करके घर में नहीं घुस सकी थी। मेरी नाजानकारी में मेरे सिरदर्द, शारीरिक पीड़ा का इतिवृत्तान्त वह ओट में रहकर बहुत कुछ जान गई थी। आज वह लज्जा-भय को दूर करके घर के भीतर आकर प्रणाम करके बैठ गई। मैंने जो एक दिन एक स्त्री को अपमान से बचाने के लिए दु:ख-स्वीकार का अर्घ्य नारी को दिया था, वह शायद, देश की समस्त नारियों की प्रतिनिधि के रूप में मेरे पाँवों के पास उसीकी प्राप्ति-स्वीकार करने के लिए आई थी। जेल से निकलकर अनेक सभाओं में अनेक मालाएँ पहिनी थीं, परन्तु आज घर के कोने में यह जो अप्रसिद्ध हाथ का सम्मान पाया था, यह मेरे हृदय में आकर बज उठा। निस्त्रैगुण्य होने का उम्मीदवार था, इस जेल-यात्री पुरुष की बहुत समय से सूखी हुई आँखें भींग उठने का उपक्रम करने लगीं। पहले ही कह चुका हूँ, सेवा का मुझे अभ्यास नहीं था। कोई पाँव दबाने के लिए आता तो अच्छा नहीं लगता, धमकाकर भगा देता। आज इस सेवा का प्रत्याख्यान करने की स्पर्धा भी मन में उदय नहीं हुई।

खुलने जिले में बुआ की आदिम ससुराल थी। उस जगह की गाँव के सम्पर्क की दो-चार स्त्रियों को बुआ ने बुलाकर रख लिया था। बुआ के काम-काज, पूजा-अर्चना में वे सब उनकी सहायक थीं। उनके अनेक प्रकार के क्रिया-कर्मों में इन सबके न होने पर उनका काम नहीं चलता था। इस घर में और सब जगह अमियाँ का अधिकार था, केवल पूजागृह में नहीं था। अमियाँ उसका कारण नहीं जानती थी, जानने की चेष्टा भी नहीं करती थी। बुआ के मन में था, अमियाँ को अच्छी तरह पढ़ना-लिखना सिखाकर ऐसे घर में विवाह करेंगी, जहाँ आचार-विचार का बन्धन न हो, और देव-द्विज जहाँ से खातिर पाये बिना सूने हाथों लौट आया करें। यह आक्षेप की बात थी।

परन्तु, इसके अतिरिक्त उसकी अन्य कोई गति हो ही नहीं सकती थी—पिता के पाप से लड़की को सम्पूर्ण रूप से बचायेगा कौन ? इसीलिए अमियाँ को उन्होंने ढलान के ढालू तट से उठकर आधुनिक आचार-हीनता में उत्तीर्ण होते समय बाधा नहीं दी थी। बचपन से ही क्लास में वह गणित और अंग्रेजी में फर्स्ट आती रही थी। वर्ष-प्रतिवर्ष मिशनरी स्कूल से फ्रॉक पहने, वेणी हिलाती हुई चार-पाँच प्राइज ले आती थी। जिस बार दैवात् परीक्षा में द्वितीय आई, उस बार सोने के कमरे का दरवाजा बन्द करके रो-रोकर आँखें फुला ली थीं; प्रायश्चित्त करने जा रही थी और क्या। इस तरह से परीक्षा देवता के समीप सिद्धि की मनौती करके वह उसीकी साधना में दीर्घ काल से तन्मय थी। अन्त में असहयोग के योगिनी मन्त्र से दीक्षित होकर परीक्षा देवी की वर्जन-साधना से भी वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। पास-ग्रहण भी जैसा था पास-छेदन भी वैसा ही हुआ, किसी तरह भी वह किसी के पीछे रहने वाली लड़की नहीं थी। पढ़ाई-लिखाई करने पर उसकी जो ख्याति थी, पढ़ाई-लिखाई छोड़ देने पर वह ख्याति और अधिक बढ़ गई। आज जो सब प्राइज उसके हाथ के समीप घूमती हैं, वे सब चलती हैं, वे सब बोलती हैं, वे अश्रु सलिल से गल जाती हैं। वे सब कविता भी लिखती हैं।

अधिक क्या कहा जाय, बुआ के गाँव की पोष्य स्त्रियों पर अमियाँ को तनिक भी श्रद्धा नहीं थी। अनाथालय के लिए जिस समय चन्दे के रुपयों की अपेक्षा अनाथाओं का ही अभाव अधिक था, उस समय इन स्त्रियों को उस जगह भेज देने के लिए बुआ के समीप अमियाँ ने बहुत प्रार्थना की थी। बुआ ने कहा था, "यह कैसी बात—ये सब तो अनाथा नहीं हैं, मैं जीवित किसलिए हूँ। अनाथ हों या सनाथ हों, स्त्रियाँ चाहती हैं घर; सदन के भीतर उन्हें छाप (मुहर) लगा कर बस्ताबन्दी करके क्यों रखा जाय। तुम्हें यदि इतनी ही दया है तो तुम्हारा घर नहीं है क्या ?"

जो भी हो, स्त्री जिस समय सिर झुकाये हुए पाँव पर हाथ फेर रही थी, मैं संकुचित अथच विगलित चित्त से एक अखबार को मुँह के सामने रख कर विज्ञापन के ऊपर आँखें गड़ाये रखने लगा। इसी समय अचानक असमय में ही अमियाँ घर के भीतर आ उपस्थित हुई। नवयुग के लिए उपयोगी भैयादूज

की एक नयी व्याख्या उसने लिखी थी। उसीका अँग्रेजी में भी वह प्रचार करना चाहती थी; मेरे पास उसी के लिए सहायता को आना आवश्यक था। इस लेख के ओरिजिनल आइडिया से भक्त दल खूब विचलित था—इसे लेकर वे लोग खूब धूमधाम करेंगे, कहकर उन्होंने कमर बाँध ली थी।

घर में घुसते ही सेवा नियुक्त स्त्री को देखते ही अमियाँ के मुख का भाव अत्यन्त कठोर हो उठा। उसके देशविख्यात दादा यदि जरा-सा इशारा मात्र कर देते तो सेवा करने वाले लोगों का क्या अभाव था? इतने मनुष्यों के रहते हुए अन्त में क्या इसी—

रुक नहीं सकी। बोली, "दादा, हरिमति को क्या तुम—"

प्रश्न समाप्त न करने देकर तुरन्त ही बोल पड़ा, "पाँव में बहुत दर्द हो रहा था।"

पुलिस-सार्जन्ट के हाथ से एक स्त्री को अपमान से बचाने के लिए जाने पर जेलखाने में गया था। आज एक स्त्री के क्रोध से दूसरी स्त्री को बचाने के लिए झूठ बात कह बैठा। इस बार भी दण्ड आरम्भ हुआ। अमियाँ मेरे पाँवों के पास बैठ गई। हरिमति ने उससे कुण्ठित मृदुकण्ठ से न जाने क्या कुछ कहा, उसने जरा-सा मुँह टेढ़ा करके जवाब ही नहीं दिया। हरिमति धीरे-धीरे उठ कर चली गई। तब अमियाँ मेरे पाँवों को ले बैठी। मेरी मुसीबत आ गई। किस तरह कहूँ 'आवश्यकता नहीं है, मुझे अच्छा ही नहीं लगता।' इतने दिनों तक अपने पाँवों के सम्बन्ध में जो स्वायत्तशासन सम्पूर्णरूप से स्थिर रखे हुए था, वह अब नहीं टिकेगा शायद।

झटपट उठ कर बैठते हुए बोला, "अमियाँ, अपना लेख तो दे, उसका अनुवाद कर डालूँ।"

"अभी रहने दो न दादा! तुम्हारे पाँव में दर्द हो रहा है, जरा दबा दूँ न?"

"नहीं, पाँव क्यों दर्द करेगा। हाँ, हाँ, थोड़ा-सा दर्द अवश्य हो रहा है। तो, देख, अभी, तेरा यह भैयादूज का आइडिया बड़ा चमत्कारिक है।

किस तरह से तेरे दिमाग में आया, यही सोचता हूँ। यह जो लिखा है कि वर्तमान युग में भाइयों का ललाट अत्यन्त विराट् है, समस्त बंगाल देश में फैला हुआ है, किसी एक घर में उसका स्थान नहीं है—यह एक बहुत बड़ी बात है। दे, मैं लिख डालूँ—With the advent of the present age, Brother's brow, waiting for its auspicious anointment from the sisters of Bengal, has grown immensely beyond the narrowness of domestic privacy, beyond the boundaries of the individual home. किसी आइडिया जैसे आइडिया को पाकर कलम पागल होकर दौड़ने लगती है।"

अमियाँ की पाँव दबाने की झोंक एकदम रुक गई। सिर दर्द कर रहा था, लिखने में जरा भी मन नहीं लग रहा था—फिर भी ऐस्प्रीन की गोली निगल कर बैठ गया।

दूसरे दिन दोपहर के समय मेरा जलधर जिस समय दिवा-निद्रा-मग्न था, ड्योढ़ी पर दरवानजी तुलसीदास की रामायण पढ़ रहे थे, गली के मोड़ से भालू को नचाने वाले की डुगडुगी सुनाई पड़ रही थी, विश्राम-त्यागी अमियाँ जिस समय युगलक्ष्मी के कर्तव्यपालन में निकल गई थी, इसी समय दरवाजे के बाहर निर्जन बरामदे में एक भीरु छाया दिखाई दी। अन्त में द्विधा करते-करते किसी समय अचानक ही एक दम वही स्त्री एक हाथ का पंखा लेकर मेरे सिर के समीप बैठ कर हवा करने लगी। समझ में आ गया, कल अमियाँ के मुँह के भावों को देख कर पाँवों से हाथ लगाने का आज और साहस नहीं हुआ था। इसी बीच नये बंगाल के भाईदूज के प्रचार की मीटिंग बैठेगी। अमियाँ व्यस्त रहेगी। इसीलिए सोचा था कि भरोसा करके कह डालूँ कि पाँवों में बड़ा दर्द हो रहा है। भाग्य से कहा नहीं—झूठी बात मन के भीतर जिस समय इतस्तत कर रही थी, ठीक उसी समय अनाथालय की त्रैमासिक रिपोर्ट हाथ में लिये हुए अमियाँ का प्रवेश हुआ। हरिमति के पंखा झलने में अचानक चमक लग गई; उसके हृत्पिण्ड की चञ्चलता और मुखश्री की बिवर्णता का अन्दाज करना कठिन नहीं

हुआ। अनाथालय की इस सेक्रेटरी के भय से उसके पंखे की गति बहुत धीमी हो आई।

अमियाँ बिस्तर के एक किनारे पर बैठ कर खूब कड़े स्वर में बोली, "देखो दादा, हमारे देश में घर-घर कितनी ही आश्रयहीन स्त्रियाँ बड़े-बड़े परिवारों में पल कर दिन काट रही हैं, अथच उन सब धनी घरों में उनकी आवश्यकता तनिक भी जरूरी नहीं है। गरीब स्त्रियाँ, जो मजदूरी करके खाने के लिए बाध्य हैं, ये सब उन्हीं लोगों के अन्न-अर्जन करने में बाधा मात्र देती हैं। ये लोग यदि जनसाधारण के काम में लगें, जैसे कि हमारे अनाथालय के काम में—तो उससे—"

समझ गया, मुझे लक्ष्य करके हरिमति के ऊपर ही इस भाषण की शिलावृष्टि थी। मैं बोला, "अर्थात्, तुम चलोगी अपने शौक के अनुसार, और आश्रयहीना स्त्रियाँ चलेंगी तुम्हारे हुक्म के अनुसार। तुम बनोगी अनाथालय की सेक्रेटरी और वे सब होंगी अनाथालय की सेविकाएँ। इसकी अपेक्षा स्वयं ही सेवा के काम में लगो; समझ सकोगी, वह काम तुम्हारे लिए असाध्य है। अनाथालयों को अतिष्ठ करना सहज है, सेवा करना सहज नहीं है। दावा अपने ऊपर करो, दूसरों के ऊपर मत करो।"

मेरा क्षात्रस्वभाव है, बीच-बीच में भूल जाता हूँ, 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।' फल यही हुआ कि अमियाँ ने बुआ की सदस्याओं में से ही एक अन्य स्त्री को लाकर हाजिर कर दिया—उसका नाम था प्रसन्न। उसे मेरे पाँव के पास बैठाकर कहा, "दादा के पाँवों में दर्द हो रहा है। तुम पैर दबा दो।" वह यथोचित अध्यवसाय के साथ मेरे पाँव दबाने लगी। यह अभागा दादा इस समय किस मुँह से कहे कि उसके पाँवों में किसी तरह का विकार नहीं हुआ है? किस तरह जताये कि इस तरह से दबाया-दबूई करके केवल मात्र उसे अपदस्थ किया जा रहा है? मन ही मन समझ गया, रोग-शैया पर अब रोगी का स्थान नहीं रहेगा। इससे तो अच्छा है, नये बंगाल की भाईदूज-समिति का सभापति हो जाना। पंखे की हवा धीरे-धीरे थम गई। हरिमति ने स्पष्ट अनुभव कर लिया, अस्त्र उसीके लिए है। यह हुआ प्रसन्न के द्वारा हिरमति को उखाड़ देना। कण्टकेनैव कण्टकम्। थोड़ी देर बाद पंखे को

जमीन पर रख कर वह उठ खड़ी हुई। मेरे पाँवों के समीप मस्तक टेक कर प्रणाम करके, धीरे-धीरे दोनों पाँवों पर हाथ फेर कर चली गई।

फिर मुझे गीता खोलनी पड़ी। उस समय भी श्लोकों की फाँक में से दरवाजे की फाँक की ओर देख लेता था—परन्तु वह एक छाप फिर कहीं दिखाई नहीं दी। उसके बदले प्रसन्न प्रायः ही आती, प्रसन्न के दृष्टान्त से और भी दो-चार स्त्रियाँ अमियाँ के देश-विख्यात देशभक्त दादा की सेवा करने के लिए जुट गईं। इधर सुनाई पड़ा हरिमति एक दिन किसी से कुछ कहे बिना कलकत्ता छोड़कर अपने गाँव के मकान में चली गई है।

महीने की बारहवीं तारीख को सम्पादक-मित्र ने आकर कहा, "यह क्या मामला है! मजाक है क्या! क्या यही तुम्हारा कठोर अनुभव है!"

मैं हँसकर बोला, "पूजा के बाजार में नहीं चलेगा क्या?"

"बिलकुल नहीं। यह तो बहुत ही हल्के प्रकार की वस्तु है।"

सम्पादक का दोष नहीं है। जेल-निवास के बाद से मेरा अश्रुजल अन्तःशीला होकर वहता था। लोग बाहर से मुझे बड़ी गम्भीर प्रकृति का आदमी समझते थे।

गल्प (कहानी) मुझे लौटाकर चले गये।

ठीक उसी समय अनिल आया। बोला, "मुँह से नहीं कह सकूँगा, इस चिट्ठी को पढ़िए।"

चिट्ठी में अमियाँ से, अपनी देवी से, युगलक्ष्मी से विवाह करने की इच्छा जताई गई थी; यह बात भी कही गई थी कि अमियाँ की असम्मति नहीं है।

उस समय अमियाँ का जन्मवृत्तान्त उससे कहना पड़ा। सहज ही नहीं कह सकता; परन्तु जानता था, हीनवर्ण के ऊपर अनिल श्रद्धापूर्ण करुणा प्रकट करता रहता था। मैंने उससे कहा, "पूर्वजों का कलङ्क जन्म के द्वारा ही स्खलित हो जाता है, यह तो तुम लोग अमियाँ के जीवन में ही स्पष्ट रूप से देख रहे हो। वह पद्म है, उसमें पङ्क (कीचड़) का चिह्न नहीं है।"

नये बंगाल की भाईदूज की सभा उसके बाद फिर नहीं जमी। तिलक तैयार रह गया, कपाल ने दौड़ लगा दी। और सुना है, अनिल ने कलकत्ता छोड़कर कुमिल्ला में स्वराज्य-प्रचार का कोई एक काम ले लिया है।

अमियाँ कॉलिज में भर्ती होने के प्रयत्न में है। इस बीच बुआ के तीर्थयात्रा से लौट आने के बाद शुश्रूषा की अनेक प्रकार की बेड़ियों से मेरे दोनों पाँवों ने छुटकारा पा लिया है।

विज्ञानी

दादा महाशय, नीलमणि बाबू तुम्हें इतने अच्छे क्यों लगते हैं, मैं तो समझ ही नहीं पाती हूँ।

यही प्रश्न पृथ्वी का सबसे अधिक कठिन प्रश्न है, इसका ठीक उत्तर कितने लोग दे सकते हैं ?

अपनी पहेली रखो। ऐसे असम्बद्ध बिखरे हुए, अज्ञात व्यक्ति को स्त्रियाँ देख भी नहीं सकतीं।

वही तो हुआ सर्टीफिकेट, अर्थात् वह व्यक्ति विशुद्ध रूप से पुरुष है।

तुम नहीं जानते, वे बातों में कैसा गुल-गपाड़ा उठा देते हैं। हाथ के पास ही जो है, वह उन्हें हाथ में ही नहीं दीखता। उसे वे ढूँढ़ते फिरते हैं, मुहल्ले-मुहल्ले में।

तब तो भक्ति होती है उस व्यक्ति के ऊपर।

कैसे, सुनूँ तो।

हाथ के पास की वस्तु ही सबसे अधिक दूर होती है, इसे कितने ही लोग जानते हैं, फिर भी निश्चिन्त रहते हैं।

एक दृष्टान्त दिखाओ तो देखूं।

जैसे तुम।

मुझे तुम ढूँढ़ कर नहीं पाते शायद ?

ढूँढ़ कर पा लेने से तो रस मारा जाता, जितना ढूँढता हूँ, उतना ही अवाक् रह जाता हूँ।

फिर तुम्हारी पहेली।

उपाय नहीं है। दीदी, मेरे लिए तुम आज भी सहज नहीं हो, नित्य-नूतन हो।

कुसुमी दादा महाशय के गले से लिपट कर बोली—दादा महाशय, यह बात परन्तु सुनने में अच्छी लगती है। परन्तु, उसे रहने दो। नीलबाबू के घर में कल कैसा कोलाहल मचा था, वह खबर तो विधु-मामा से सुनी ही नहीं।

क्यों जी, मामा क्या हुआ था, सुनूँ तो।

अद्भुत—विधु मामा बोले—मुहल्ले में शोर उठा, नीलूबाबू की कलम नहीं मिल रही है; ढूँढ पड़ गई मशहरी छत तक। बुलवाया गया मुहल्ले के माधू बाबू को।

बोले—अरे माधू, मेरी कलम ?

माधू बाबू बोले—जानने पर खबर दूँगा।

धोबी को बुलाया गया, बुलाया गया हारू नाई को। घर के सभी लोग जब अपना हाल छोड़ बैठे थे, उस समय उनके भानजे ने आकर कहा—कलम तो तुम्हारे कान में ही लगी हुई है।

जब कोई सन्देह नहीं रहा तब भानजे के गाल पर एक चाँटा मार कर कहा—बेवकूफ कहीं का, जो कलम मिल नहीं रही है, उसीको ढूँढ़ रहा हूँ।

रसोई घर में से स्त्री बाहर आई; बोली—घर को सिर पर क्यों उठा लिया है ?

नीलू बोले—जिस कलम को चाहता हूँ, ठीक उसीको ढूँढ़े नहीं पा रहा हूँ।

बहू दीदी बोलीं—जो मिल गई है, उसी से काम चलालो, जो नहीं मिल रही है, उसे कहीं भी नहीं पाओगे।

नीलू बोले—अन्ततः वह मिल जायेगी कुण्डुओं की दूकान में।

बहू दीदी बोलीं—नहीं जी, दूकान में वह माल नहीं मिलता।

नीलू बोले—तब तो वह चोरी चली गई।

तुम्हारी सभी वस्तुएँ ही तो चोरी चली जाती हैं, जब आँखों से नहीं देख पाते हो। अब चुपचाप इसी कलम को लेकर ही लिखो, मुझे भी काम करने दो। मुहल्ले भर को अस्थिर कर डाला है।

एक सामान्य कलम क्यों नहीं पा सकूँगा, सुनूँ तो।

बिना पैसे के नहीं मिलती, इसलिए।

रुपये दूँगा—ओरे, भूतो !

जी—

रुपये की थैली ढूँढ़े नहीं मिल रही है।

भूतो बोला—वह तो आपके कुर्ते की जेब में थी।

सचमुच क्या ?

जेब में ढूँढ़ कर देखा—थैली है, थैली में रुपये नहीं हैं। रुपये कहाँ गये ?

रुपये ढूँढ़ने को निकले। बुलवाया गया धोबी को।

मेरी जेब की थैली में से रुपये कहाँ गये ?

धोबी बोला—मैं क्या जानूँ। इस कुर्ते को मैंने नहीं धोया।

बुलाया गया उस्मान दर्जी को।

मेरी थैली में से रुपये कहाँ गये ?

उस्मान नाराज होकर बोला—आपके लोहे के सन्दूक में हैं।

दामाद के घर से स्त्री लौट आकर बोली—क्या हुआ है ?

नीलमणि, घर में डकैत पाले हैं। जेब से रुपये ले गये।

स्त्री बोली—हाय रे कपाल—उस दिन जो मकान वाले को मकान का किराया चुका दिया था ३५) रुपये।

ऐसा है क्या ! मकान वाले ने मकान छोड़ देने के लिए मुझे नोटिस भेजा था।

तुमने किराया चुका दिया था उसके बाद ही।

यह कैसी बात ! मैंने तो बादुड़-बागान में नीमचाँद हाल्दार के पास जाकर उसके मकान को किराये पर लिया था।

स्त्री बोली—बादुड़-बागान, वह और किस चूल्हे में है ?

नीलमणि बोले—ठहरो, सोच देखूँ। वह किस गली के किस नम्बर में है यह तो याद नहीं आ रहा। परन्तु उस आदमी के साथ लिखा-पढ़ी हो गई थी—डेढ़ वर्ष के लिए किराये पर लेना होगा।

स्त्री बोली—अच्छा किया, अब दो मकानों का किराया कौन चुकायेगा ?

नीलमणि बोले—वह तो सोचने की बात नहीं है। मैं सोच रहा हूँ, कौन सा नम्बर, कौन सी गली है। मेरी नोट-बुक में बादुड़-बागान का घर लिखा हुआ है। परन्तु याद नहीं आ रहा, गली का नम्बर लिखा हुआ है या नहीं।

तो अपनी नोटबुक बाहर निकालो न।

मुश्किल यही है कि तीन दिन से नोटबुक ढूँढ़े नहीं मिल रही है।

भानजा बोला—मामा, याद नहीं है ? वह तो तुमने दीदी को दे दी थी स्कूल की कापी लिखने को।

तेरी दीदी कहाँ गई ?

वे तो चली गई हैं इलाहाबाद में मौसाजी के घर।

मुसीबत में डाल दिया, देखता हूँ। अब कहाँ ढूँढ़ कर पाऊँ, कौन गली, कौन नम्बर ?

इसी समय आ पड़ा नीमचाँद हाल्दार का किरानी। वह बोला—बादुड़-बागान के मकान का किराया माँगने आया हूँ।

कौन सा मकान ?

वही, १३ नम्बर, शिबू समाद्दार की गली।

बच गया, बच गया। सुन रही हो बहू ! १३ नम्बर, शिबू समाद्दार की गली, अब चिन्ता नहीं है।

सुन कर मेरे माथामुण्ड का क्या होगा ?

एक ठिकाना मिल गया।

वह तो मिल गया। अब दो मकानों का भाड़ा चुकाओगे किस तरह ?

यह बात बाद में होगी। परन्तु मकान का नम्बर १३, गली का नाम शिबू समाद्दार की गली है।

किरानी का हाथ पकड़ कर बोले—भाई, बचा लिया मुझे। तुम्हारा नाम क्या है बताओ, मैं नोटबुक में लिख रखूं। जेब टटोलकर बोले, यह लो। नोटबुक है इलाहाबाद में। कण्ठस्थ किये रहूँगा १३ नम्बर, शिबू समाद्दार की गली।

कुसुमी बोली, यह कलम खोने का मामला तो साधारण सी बात है। जिस दिन उनके एक पाँव की चप्पल नहीं मिल रही थी, उस दिन नीलमणि बाबू के घर में कैसा धुन्धूमार ही बँध गया था—उनकी स्त्री ने प्रतिज्ञा की, वे अपने पिता के घर चली जायेंगी। नौकर-चाकरों ने एकजुट होकर कहा, यदि एक पाँव की चप्पल को लेकर उन पर सन्देह किया जायगा, तो वे लोग काम से इस्तीफा दे देंगे—उसके बाद उस चप्पल पर तीन तालियाँ बजाई गईं।

मैं बोला, खबर मेरे भी कान में आई थी; देखा था, मामला गम्भीर हो गया है। गया नीलू के मकान में। बोला—भाई, तुम्हारी चप्पल खो गई है?

वे बोले—दादा, खोई नहीं है, चोरी गई है, मैं उसका प्रमाण दे सकता हूँ।

प्रमाण की बात उठते ही मैं भयभीत हो गया। आदमी वैज्ञानिक है, एक, दो, तीन करके जब तक प्रमाणित करता रहेगा मेरा नहाना-खाना छूट जायगा। मुझे कहना पड़ा, अवश्य चोरी गई है। परन्तु ऐसे आश्चर्यजनक चोर का अड्डा कहाँ है, जो एक पाँव की चप्पल चुराता घूमता है, मुझे जानने की इच्छा हो रही है।

नीलू बोले—यही तो है तर्क का विषय। इससे प्रमाणित होता है कि चमड़े के बाजार में चली गई है।

मैंने देखा, इसके ऊपर और बात नहीं चलेगी। बोला—नीलू भाई, तुमने असली बात पकड़ ली है। आजकल के दिनों में सब बाजार में ही ले जाते हैं। इसीलिए मैंने देखा है, मल्लिकों की ड्योढ़ी पर पाँच-सात दिन के बाद मोची आकर दरवानजी के नागरा जूतों में तला लगाने का प्रदर्शन करता है। उसकी दृष्टि रास्ते के लोगों के पाँवों की ओर रहती है।

उस समय के अनुसार उसे मैंने ठण्डा कर दिया। उसके बाद वही चप्पल निकली बिछौने के नीचे से। नीलू का प्रिय कुत्ता उसे लेकर आनन्द से छेड़ाछाड़ी कर रहा था। नीलू को सबके अधिक दुःख इस चप्पल का पता लग जाने से हुआ; उसका प्रमाण मारा गया।

कुसुमी बोली—अच्छा दादा महाशय, मनुष्य इतना बड़ा बेवकूफ कैसे हो जाता है ?

मैं बोला—ऐसी बात मत कहो दीदी, अङ्कशास्त्र (गणित) में वह पण्डित है। अङ्क लिख-लिख कर उसकी बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो गई है कि साधारण लोगों की दृष्टि में ही नहीं पड़ती।

कुसुमी नाक फुलाकर बोली—अपने अङ्कों को लेकर क्या करते हैं वे ?

मैं बोला—आविष्कार। चप्पल क्यों खोती है, इसे वे हर समय ढूँढ़ नहीं पाते, परन्तु चाँद में ग्रहण लगने में चौथाई सैकेण्ड की देर भी क्यों होती है, यह उनके अङ्क की नोंक से मालूम पड़ ही जायगा। आजकल वे प्रमाणित करने में लगे हुए हैं कि संसार में ग्रह-तारा कोई भी वस्तु घूमती नहीं है, वे केवल उछलते हैं। इस संसार में कोटि-कोटि पतंगों को छुटकारा मिल गया है। इसका अकाट्य प्रमाण भी उनकी कॉपी में है। मैं और बात नहीं कहता, कहीं ये बातें बाहर न निकल जायें।

कुसुमी अत्यन्त विरक्त होकर बोली—उनकी क्या सभी बातें अनासृष्टि हैं, खाते-पीते हुए मुक्त पतंगों की कुदान नाप-नाप कर अङ्क लिखते रहते हैं। ऐसा हुए बिना उनकी ऐसी दशा कैसे होती ?

मैं बोला—उनकी गृहस्थी घूमती-घूमती नहीं चलेगी, तिड़िंग-बिड़िंग करके कूदती-कूदती चलेगी।

कुसुमी बोली—इतनी देर में समझी, इस व्यक्ति की चाहे कलम खो जाय चाहे एक पाँव की चप्पल, वह क्यों नहीं मिल पाती। और, तुम भी उन्हें किसलिए इतना स्नेह करते हो। जितने भी पागल हैं, उन्हीं पर तुम्हें स्नेह है और वे ही तुम्हारे चारों ओर आ जुटते हैं।

देखो दीदी सबके अन्त में तुमसे एक बात कहे देता हूँ। तुम सोचती हो, नीलू अभागे को लेकर तुम्हारी बहूदीदी नाराज ही रहती हैं। गुप्त रूप से तुम्हें जताये देता हूँ—एकदम उसका उल्टा है। उसके इस असम्बद्ध, बिखरे हुए भाव को देखकर ही वे मुग्ध हैं। मेरी भी वही दशा है।

भैया दूज

श्रावण मास आज जैसे एक रात में ही एकदम दिवालिया हो गया था। सम्पूर्ण आकाश में कहीं भी एक छिन्न मेघ का टुकड़ा भी नहीं था।

आश्चर्य यही था कि मेरा सबेरा आज इस तरह से बीत रहा था। मेरे बगीचे की मेंहदी के बेड़े के कोने में शिरीषवृक्ष के पत्ते झलमला रहे थे, मैं उन्हें टकटकी लगा कर देख रहा था। सर्वनाश के जिस बीच दरिया में आ पहुँचा था, यह जब दूर ही था, उस समय इसकी बाबत सोचकर कितनी ठण्डी रातों में सर्वांग से पसीना निकल उठा था, कितने गर्मी के दिनों में हाथ-पाँव के तले ठण्डे होकर बर्फ बन गये थे। परन्तु, आज सभी भय-भावनाओं से इस तरह छुट्टी मिल गई थी कि यह जो सीताफल के वृक्ष की डाली पर एक गिरगिट स्थिर होकर शिकार को लक्ष्य कर रहा था, उसकी ओर भी मेरी आँखें लगी हुई थीं।

सर्वस्व खोकर राह पर खड़े होना, यह उतना कठिन नहीं था—परन्तु, हमारे वंश में जो सच्चाई की ख्याति आज तीन पीढ़ियों से चली आ रही थी,

वह मेरे ही जीवन के ऊपर पछाड़ खाकर चूर-चूर होने को चल दी, उसी लज्जा से ही मेरा दिन-रात कल्याण नहीं था। यही क्यों, आत्महत्या की बात भी अनेक बार सोची थी। परन्तु, आज जब और पर्दा नहीं रहा, खाता-पत्र के गुहा-गह्वर से अख्याति की बातें काले कीड़ों की भाँति कुलबुलाती हुई बाहर निकलकर अदालत में होकर समाचार पत्रों में निकल गईं, उस समय मेरा एक भारी बोझ उतर गया। पूर्वजों के सुनाम को खींचते हुए घूमने के उत्तरदायित्व से रक्षा प्राप्त हुई। सभी जान गये, मैं जुआ चोर हूँ। बच गया।

वकील-वकीलों में छेड़ाछाड़ी होकर सभी बातें प्रकट हो जायेंगी, केवल अधिक कलङ्क की बात प्रकट होने की सम्भावना नहीं है—कारण, स्वयं धर्म के अतिरिक्त उसका और कोई फरियादी नहीं बचा है। इसीलिए उसे प्रकट कर देने के लिए ही आज कलम उठाई है।

मेरे पितामह उद्धवदत्त ने अपने मालिकों के वंश की विपत्ति के दिनों में स्वयं की सम्पत्ति देकर रक्षा की थी। तभी से हमारे दरिद्रय ने अन्य लोगों के धन की अपेक्षा मस्तक ऊँचा कर लिया था। मेरे पिता सनातनदत्त डिरोजियों के छात्र थे। शराब के सम्बन्ध में उनका जैसा अद्‌भुत नशा था, सत्य के सम्बन्ध में उससे अधिक था। माँ ने हम लोगों से एक दिन नाई-भाई की कहानी कही थी, सुन कर दूसरे दिन से ही सन्ध्या के बाद हमारे मकान के भीतर जाना उन्होंने एक दम बन्द कर दिया। बाहर पढ़ने के घर में सोते थे। उस जगह दीवाल पर टँगे हुए नक्शे सत्य बात कहते थे, जनहीन विशाल मैदान की खबर नहीं देते थे, एवं सात समुद्र पार करने वाली नदी की कहानी को फाँसी के तख्ते पर लटकाये रहते थे। सत्यता के सम्बन्ध में भी उनकी पवित्र वायु प्रबल थी। हम लोगों की जवाबदेही का अन्त नहीं था। एक दिन एक 'हुंकार' ने दादा को कोई वस्तु बेची थी। उसीकी किसी-एक पुड़िया के एक धागे को लेकर खेल रहा था। पिताजी के हुक्म से वह धागा हकार को लौटा आने के लिए मुझे सड़क पर दौड़ना पड़ा था।

हम लोग साधुता के जेलखाने में सत्यता की लोहे की बेड़ी पहनने वाले मनुष्य थे। मनुष्य कहने पर कुछ अधिक कहना हो जायगा—हमारे अतिरिक्त और सभी मनुष्य थे, केवल हम लोग मनुष्यता के दृष्टान्त-स्थल थे,

हम लोगों का खेल कठिन था, मजाक बन्द, बातें नीरस, वाक्य स्वल्प, हँसी संयत, व्यवहार निर्दोष। इससे बाल्यलीला में जो एक बड़ी फाँक पड़ गई थी, लोगों की प्रशंसा से वह भर रही थी। हमारे मास्टर से लगाकर मोदी तक सभी स्वीकार करते थे, दत्त घराने के लड़के सत्ययुग से अचानक रास्ता भूल कर आ गये हैं।

पत्थरों से ठोस की हुई पक्की सड़क में भी जरा-सी फाँक पाते ही प्रकृति उसके भीतर से अपनी प्राण-शक्ति की हरी जयपताका उठा बैठती है। मेरे नये जीवन में सभी तिथियाँ एकादशी हो उठी थीं, परन्तु उन्हीं के भीतर उपवास की एक किसी फाँक से मैंने जरा-सा अमृत का स्वाद पा लिया था।

जिन कुछ लोगों के घरों में हमारे खाने-आने की बाधा नहीं थी, उनमें से एक व्यक्ति थे अखिल बाबू। वे ब्रह्मसमाज के आदमी थे; पिताजी उन पर विश्वास करते थे। उनकी लड़की थी अनुसूया, मुझसे छै वर्ष छोटी थी। मैंने उसके शासनकर्त्ता का पद ले लिया था।

उसके शिशुमुख की वे घनी काली आँखों की पलकें मुझे याद हैं। उन्हीं पलकों की छाया से इस पृथ्वी के आलोक की सम्पूर्ण प्रखरता उसकी आँखों में जैसे कोमल होकर आ गई थी। किस स्निग्ध दृष्टि से वह मुँह की ओर देखती थी! पीठ के ऊपर हिलती हुई उसकी वह वेणी भी मुझे याद है; और याद हैं वे दोनों हाथ—जाने क्यों, उनमें एक बड़ी करुणा थी। वह जैसे राह पर चलती हुई किसी दूसरे का हाथ पकड़ना चाहती थी; उसकी वे कोमल उँगलियाँ जैसे पूर्णरूप से विश्वास करके किसी की मुट्ठी में पकड़ाई देने के लिए राह देखती रहती थीं।

ठीक उस दिन इसी तरह से उसे देख सका था, यह बात कहना अधिक होगा। परन्तु, हम लोग सम्पूर्ण रूप से समझने से पहले भी बहुत कुछ समझ लेते हैं। अगोचर मन के भीतर अनेक तस्वीरें खिच जाया करती हैं—अचानक किसी दिन किसी ओर से उजाला पड़ने पर वे सब आँखों को दीख उठती हैं।

अनु के मन के दरवाजे पर सख्त पहरा नहीं था। वह चाहे जिस पर विश्वास कर लेती थी। पहले तो उसने अपनी बुढ़िया दासी के पास से

विश्वतत्व के सम्बन्ध में जो सब शिक्षाएँ प्राप्त की थीं, वे मेरे उस नक्शे टँगे हुए पढ़ने के कमरे के ज्ञान-भण्डार की आवर्जना के मध्य स्थान पाने योग्य नहीं थीं; दूसरे वह फिर स्वयं की कल्पना के योग से कितनी ही सृष्टि कर लेती थी, उसका ठिकाना ही नहीं था। इस जगह केवल उस पर अपना शासन चलाना पड़ता। केवल कहना होता, "अनु, यह सब झूठी बातें हैं, यह जानती हो ! इनसे पाप लगता है।" सुन कर अनु की दोनों आँखों की काली पलकों की छाया के ऊपर और एक भय की छाया पड़ जाती। अनु जब अपनी छोटी बहिन का रोना रोकने के लिए कितनी ही व्यर्थ की बातें कहती—उसे भुला कर दूध पिलाने के समय जिस जगह पक्षी नहीं है उस जगह भी 'पक्षी है' कहकर उच्च स्वर से 'उड़ गया' की खबर देने का प्रयत्न करती, मैं उसे भयंकर गम्भीर होकर सावधान कर देता था; कहता था, "उससे जो झूठ बोल रही हो, उसे परमेश्वर सुन रहे हैं, इसी समय तुम्हें उनसे माफी माँगना उचित है।"

इस तरह से मैं उस पर जितना भी शासन करता, वह मेरे शासन को मान लेती थी। वह स्वयं को जितनी ही अपराधी अनुभव करती, मैं उतना ही खुश होता। कड़े शासन से मनुष्य को भला बनाने का सुयोग पाकर, स्वयं जो अनेक शासन से भला बना जाता है, उसकी एक कीमत ही वापिस मिल जाती है। अनु भी मुझे स्वयं के साथ और पृथ्वी के अधिकांश लोगों के साथ तुलना करके अद्भुत रूप से भला समझती थी।

क्रमशः आयु बड़ी हुई, स्कूल से कॉलेज में गया। अखिल बाबू की पत्नी की मन ही मन इच्छा थी, मेरे जैसे भले लड़के के साथ अनु का विवाह कर दिया जाय। मेरे भी मन में यह था कि किसी कन्या के पिता की आँखों से ओझल होने योग्य लड़का मैं नहीं हूँ। परन्तु एक दिन सुना, बी० एल० परीक्षा पास एक नये मुंसिफ के साथ अनु का सम्बन्ध पक्का हो गया है। हम लोग गरीब हैं—मैं तो जानता था कि उसी से हम लोगों की कीमत अधिक हो गई है। परन्तु, कन्या के पिता के हिसाब की प्रणाली स्वतन्त्र थी।

विसर्जन की प्रतिमा डूब गई। एक दम जीवन की किसी ओट में वह जा पड़ी। बचपन से जो मेरी सबसे अधिक परिचित थी, वह एक दिन में ही

हजार-लाख अपरिचित मनुष्यों के समुद्र के भीतर डूब गई। उस दिन मन को कैसा लगा, उसे मन ही जानता है। परन्तु, विसर्जन के बाद भी क्या यह पहिचान सका कि वह मेरी देवी की प्रतिमा है? सो नहीं। अभिमान उस दिन चोट खाकर और भी लहरें उठाने लगा। अनु को तो हमेशा से छोटी ही देखता आया था; उस दिन अपनी योग्यता की तुलना में उसे और भी छोटे रूप में देखा। मेरी श्रेष्ठता की पूजा नहीं हुई, उस दिन इसीको संसार में सबसे अधिक बड़े अकल्याण के रूप में समझा।

जाने दो, यह समझ में आ गया, संसार में केवल सच्चा होने से ही कोई लाभ नहीं है। प्रण किया, इतना रुपया कमाऊँगा कि एक दिन अखिल बाबू को भी कहना पड़ेगा, "बड़े धोखे में आ गया।" खूब कसकर काम का आदमी होने का प्रबन्ध किया।

काम का आदमी बनने के लिए सबसे बड़ा काम अपने ऊपर अगाध विश्वास है; उस दिशा में मुझमें किसी दिन कोई कमी नहीं थी। यह वस्तु संक्रामक होती है। जो स्वयं पर विश्वास करता है, अधिकांश व्यक्ति उसी पर विश्वास करते हैं। व्यापारिक बुद्धि मुझमें स्वाभाविक एवं असाधारण है। इसे सभी मानने लगे।

व्यापार-सम्बन्धी साहित्य एवं अखबारों से मेरी शेल्फ एवं टेबुल भर उठी। मकान की मरम्मत, बिजली की बत्तियाँ एवं पंखों का कौशल, किस वस्तु का क्या भाव है, बाजारभाव के उठने-गिरने का गूढ़ तत्व, एक्सचेंज का रहस्य, प्लान, ऐस्टीमेट आदि विद्याओं में मजलिस जमाने जैसी उस्तादी मैंने एक तरह से मार ली।

परन्तु, रात-दिन व्यापार की बातें करता, फिर भी किसी तरह किसी काम में नहीं उतरा, इस तरह से अनेक दिन काट दिये। मेरे भक्तगण जब भी मुझसे किसी एक स्वदेशी कम्पनी में योग देने का प्रस्ताव करते, मैं समझा देता, जितने भी कारबार चल रहे हैं, किसी के भी काम की धारा विशुद्ध नहीं है, सभी के भीतर दोष भरे हुए हैं—इसके अतिरिक्त, सत्य को बचा कर चलने में उन लोगों के साथ मिलने की सामर्थ्य नहीं है। सचाई की

लगाम में थोड़ी-बहुत ढील दिये बिना व्यापार नहीं चलता, ऐसी बात मेरे किसी मित्र द्वारा कहे जाने पर, उसके साथ मेरा विच्छेद हो गया।

मृत्यु-काल पर्यन्त सर्वाङ्ग सुन्दर प्लान, ऐस्टीमेट एवं प्रोस्पेक्टस लिख कर अपने यश को अक्षुण्ण रख सकता था। परन्तु, विधि के विपाक से प्लान बनाना छोड़ कर काम करने लगा। एक तो पिता की मृत्यु हो जाने से मेरे कन्धों पर ही गृहस्थी का दायित्व आ गया था; उसके बाद एक और उपसर्ग आ जुटा, वह बात भी कहे देता हूँ।

प्रसन्न नामक एक लड़का मेरे साथ पढ़ता था, वह जैसा मुखर था, वैसा ही निन्दक था। हमारी पैतृक सत्यता की ख्याति को लेकर चोट देने का उसे भारी सुयोग मिल गया था। पिताजी ने मेरा नाम रखा था सत्यधन। प्रसन्न हम लोगों की दरिद्रता को लक्ष्य करके कहता, "पिता ने देते समय दिया मिथ्याधन, और नाम के समय दिया सत्यधन, इसकी अपेक्षा धन को सचमुच में देकर, नाम को झूठमूठ ही दे देते तो नुकसान नहीं होता।" प्रसन्न के मुँह से मैं बड़ा डरता था।

बहुत दिन तक उससे भेट ही नहीं हुई। इस बीच वह बर्मा में, लुधियाना में, श्रीरङ्गपत्तन में अनेक रकम-बेरकम के काम करके लौट आया। वह अचानक ही कलकत्ते में आकर मुझे पा बैठा। जिसके मजाक से हमेशा डरता आया था, उसकी श्रद्धा पाना क्या कम आराम था!

प्रसन्न ने कहा, "भाई, मेरी यह बात रही, देख लेना, एक दिन तुम दूसरे मतिशील अथवा दुर्गाचरण ला[1] न बन जाओ तो मैं बहूबाजार के मोड़ से बागबाजार के मोड़ तक बराबर सामने ही नाक रगड़ने को तैयार हूँ।"

प्रसन्न के मुख की इतनी बड़ी बात कितनी बड़ी हो सकती है, इसे जो लोग प्रसन्न के साथ एक क्लास में नहीं पढ़े हैं, वे समझ ही नहीं सकते। उस पर भी प्रसन्न पृथ्वी को खूब कस कर पहिचान आया है; उसकी बात की कीमत है।

---

१. कलकत्ते के धनी लोगों के नाम।

वह बोला, "काम को समझने वाले लोग मैंने ढेरों देखे हैं, दादा—परन्तु वे ही सबसे अधिक मुसीबत में पड़ते हैं। वे लोग बुद्धि के जोर से ही किस्त को मात करना चाहते हैं, भूल जाते हैं कि माथे के ऊपर धर्म भी है परन्तु तुममें तो मणि-कांचन का योग है। धर्म को भी मजबूती से पकड़े हो, फिर कर्म की बुद्धि में भी तुम पक्के हो।"

उस समय व्यावसायिक पागलपन की बात भी चल पड़ी। अच्छी तरह निश्चित कर बैठे कि वाणिज्य के अतिरिक्त देश की मुक्ति नहीं है; एवं यह भी निश्चित रूप से समझ में आ गया कि केवलमात्र मूलधन का प्रबन्ध होते ही वकील, मुख्त्यार, डाक्टर, शिक्षक, छात्र एवं छात्रों के बाप-दादा सभी एक दिन में ही सब तरह के व्यवसायों को पूरी ताकत से चला सकते हैं।

मैंने प्रसन्न से कहा, "मेरे पास सहारा नहीं है।"

वह बोला, "विलक्षण! तुम्हारे पास पैतृक सम्पत्ति का क्या अभाव है!"

उस समय अचानक याद आया, तो शायद प्रसन्न इतने दिनों से मेरे साथ एक लम्बा मजाक करता आ रहा है।

प्रसन्न ने कहा, "मजाक नहीं है दादा! सत्यता ही तो लक्ष्मी का स्वर्ण कमल है। आदमी के विश्वास पर ही कारबार चलता है, रुपयों से नहीं।"

पिता के जमाने से ही हमारे मकान में मुहल्ले की कोई-कोई विधवा स्त्रियाँ अपने रुपये अमानत के तौर पर रख जाती थीं। वे सूद की आशा नहीं करती थीं; केवल यही समझ कर निश्चिन्त थीं कि स्त्रियों के सभी जगह ठगे जाने की आशङ्का है, केवल हमारे घर में ही नहीं है।

उन अमानती रुपयों को लेकर स्वदेशी-एजेन्सी खोल दी। कपड़ा, कागज, स्याही, बटन, साबुन जो भी आते बिक जाया करते—एकदम टिड्डियों की तरह खरीददार आने लगे।

एक बात है—विद्या जितनी ही बढ़ती है, यह समझ में आता है कि कुछ भी नहीं जानता। रुपयों की भीं वही दशा है। रुपये जितने बढ़ते हैं, मन में होता है, 'रुपये नहीं हैं' यही कहना पड़ेगा। मेरे मन की उस तरह की

हालत में ही प्रसन्न ने कहा कि ठीक जो कह रहे हो वह नहीं है, और मुझसे कहलवा लिया कि खुदरा दूकानदारी के काम में जीवन लगाना जीवन को व्यर्थ नष्ट करना है। जो व्यापार पृथ्वी भर में फैला हो, वही तो व्यापार है। देश के भीतर ही जो रुपया रहता है, वह कोल्हू के बैल की भाँति आगे नहीं बढ़ता, केवल घूम-घूम कर मर जाता है।

प्रसन्न ऐसी भक्ति से गद्-गद् हो उठा जैसे ऐसी नयी और गहरे ज्ञान की बात उसने जीवन में और कभी नहीं सुनी हो। उसके बाद मैंने उसे भारतवर्ष में अलसी के व्यवसाय का सात वर्ष का हिसाब दिखाया। किस जगह अलसी कितने परिमाण में जाती है; कहाँ क्या भाव रहता है; सबसे अधिक ऊँचा मूल्य कहाँ रहता है, कम कहाँ रहता है; खेतों में उसके दाम क्या होते हैं, जहाज घाट पर उसका क्या मूल्य होता है; किसानों के घर से खरीद कर एकदम समुद्रपार भेजने का प्रबन्ध कर सकने पर एक ही छलांग में कितना लाभ होना उचित है—कहीं पर तो इस बारे में रेखाएँ काटकर, कहीं पर उसे सैकड़ों की संख्या में हिसाब के अङ्क लगाकर, कहीं पर अनुलोम प्रणाली से, कहीं पर प्रतिलोम प्रणाली से, लाल एवं काली स्याही से, अत्यन्त परिष्कृत अक्षरों में लम्बे कागज के पाँच-सात पृष्ठ भर कर जिस समय प्रसन्न के हाथ में दिये, उस समय वह मेरे पाँवों की धूलि लेने लगा और क्या।

वह बोला, "मन में विश्वास था, मैं यह सब कुछ-कुछ समझता हूँ; परन्तु आज से दादा, तुम्हारा शागिर्द हो गया हूँ।"

फिर जरा-सा प्रतिवाद भी किया। बोला, "यो ध्रुवाणि परित्यज्य—याद है तो? क्या पता, हिसाब में भूल भी रह सकती है।"

मेरी जिद चढ़ गई। भूल नहीं है, कागज में उसके अकाट्य प्रमाण बढ़ने लगे। नुकसान जितनी तरह के भी हो सकते थे, सबको पंक्तिबद्ध खड़ा करके भी, मुनाफे को किसी तरह भी बीस-पच्चीस प्रतिशत से नीचे उतारा नहीं जा सका।

इस तरह से दूकानदार की पतली नदी में बहकर, जिस समय कार-बार के समुद्र में गिरा गया, उस समय वैसा नितान्त मेरी ही जिद के कारण हुआ है, ऐसा एक भाव दिखाई दिया। जिम्मेदारी मेरी ही थी।

एक तो दत्तवंश की सच्चाई, उस पर भी ब्याज का लोभ; अमानत के रुपये बढ़ने लगे। स्त्रियाँ गहने बेच कर रुपया देने लगीं।

काम में प्रवेश करके फिर दिशा नहीं मिली। प्लान में जो वस्तुएँ दिव्य लाल एवं काली स्याही की रेखा से विभाजित थीं, काम के भीतर वह विभाग ढूँढ़ पाना भी मुश्किल था। मेरे प्लान का रसभङ्ग हो रहा था, इसलिए काम में सुख नहीं मिलता था। अन्तरात्मा स्पष्ट समझने लगी, काम करने की क्षमता मुझमें नहीं है; अथच उसे कबूल करने की क्षमता भी मुझमें नहीं है। काम स्वभावतः प्रसन्न के हाथ में ही जा पड़ा, अथच मैं ही कारबार का हर्ता-कर्ता और विधाता हूँ, इसके अतिरिक्त प्रसन्न के मुँह पर और बात ही नहीं थी। उसका मतलब एवं मेरे हस्ताक्षर, उसकी दक्षता एवं मेरी पैतृक ख्याति, इन दोनों को मिलाकर व्यवसाय चारों पाँव उठाकर किस मार्ग पर दौड़ रहा है, इसे निश्चित ही नहीं कर सका।

देखते-देखते ऐसी जगह आ पड़ा, जहाँ तल भी नहीं मिल रहा था, कूल भी नहीं दीख रहा था। उस समय डाँड़ को छोड़कर यदि सच्ची बात को प्रकट कर देता तो सचाई की रक्षा हो जाती परन्तु ख्याति की रक्षा नहीं होती। अमानती रुपयों की ब्याज जुटाने लगा, परन्तु यह मुनाफे में से नहीं था। इसलिए ब्याज की दर बढ़ा कर अमानत (ऋण) की मात्रा बढ़ाता रहा।

मेरा विवाह बहुत दिन पहले हो चुका था। मैं जानता था, घर-गृहस्थी के अतिरिक्त मेरी पत्नी को और किसी तरह का कोई ख्याल नहीं है। अचानक देखा, अगस्त्य की भाँति एक चुल्लू में रुपये के समुद्र को सोख लेने का लोभ उसे भी है। मैं नहीं जानता, किस समय मेरे ही मन से निकलकर यह हवा हमारे सम्पूर्ण परिवार में बहना आरम्भ कर चुकी थी। हमारे नौकर, दासी, दरवान तक हमारे कारबार में रुपये डाल रहे थे। मेरी पत्नी भी मुझे पकड़ बैठी, वह थोड़े-बहुत गहने बेचकर मेरे कारबार में रुपये लगायेगी। मैंने भर्त्सना की, उपदेश दिया। बोला, लोभ जैसा बैरी कोई नहीं है। स्त्री के रुपये नहीं लिये।

एक अन्य व्यक्ति के रुपये भी मैं नहीं ले सका।

अनु एक लड़के को लेकर विधवा हो गई थी। 'जैसा कृपण वैसा ही धनी' के रूप में उसके पति की प्रसिद्धि थी। कोई कहता, उसके डेढ़ लाख रुपये जमा हैं; कोई कहता और भी बहुत अधिक हैं। लोग कहते थे, कृपणता में अनु अपने पति की सहधर्मिणी थी। मैं सोचता था, 'वह तो होगी ही। अनु ने वैसी शिक्षा और साथ तो पाया ही नहीं।'

इन रुपयों को लगा देने के लिए उसने मेरे पास अनुरोध भिजवाया। लालच हुआ, दरकार भी खूब थी, परन्तु डरकर उससे भेंट करने तक को नहीं गया।

एक बार जिस समय एक बड़ी हुण्डी की म्याद समीप थी, उस समय प्रसन्न ने आकर कहा, "अखिल बाबू की लड़की के रुपये इस बार लिये बिना नहीं चलेगा।"

मैं बोला, "जैसी हालत है, उसमें मेरे द्वारा सेंध लगाना (चोरी करना) सम्भव है, परन्तु उन रुपयों को मैं नहीं ले सकूँगा।"

प्रसन्न ने कहा, "जहाँ से तुम्हारा भरोसा चला गया है, वहाँ से ही कारबार में नुकसान जा रहा है। कपाल ठोंकने लगने पर कपाल की ताकत भी बढ़ जाती है।"

किसी तरह भी राजी नहीं हुआ।

दूसरे दिन प्रसन्न ने आकर कहा, "दक्षिण से एक विख्यात मराठी ज्योतिषी आये हैं, उनके पास जन्मपत्र लेकर चलो।"

सनातन दत्त वंश में जन्मपत्र मिलाकर भाग्य परीक्षा! दुर्बलता के दिनों में मानव-प्रकृति के अन्तरतम में प्राचीनयुग का बर्बर बल पा उठता है। जो दृष्ट है, वह जिस समय भयङ्कर हो उठता है, उस समय जो अदृष्ट है, उसे छाती से चिपटा लेने की इच्छा होती है। बुद्धि पर विश्वास करके कोई आरम्भ नहीं मिल रहा था, इसीलिए निर्बुद्धिता की शरण ली, जन्म-क्षण और सन्-तारीख लेकर ज्योतिषी के पास गया।

सुना, मैं सर्वनाश के अन्तिम किनारे पर आ खड़ा हुआ हूँ। परन्तु, इस बार वृहस्पति अनुकूल हैं—इस समय वे मेरा किसी एक स्त्री के धन की सहायता से उद्धार करके अतुल ऐश्वर्य से मिला देंगे।

इसमें प्रसन्न का हाथ है, ऐसा सन्देह कर सकता था। परन्तु, सन्देह करने की किसी तरह इच्छा ही नहीं हुई। घर लौटकर प्रसन्न ने मेरे हाथ में एक पुस्तक देते हुए कहा, "खोलो तो सही।" खोलते ही जो पृष्ठ निकला, उस पर अँग्रेजी में लिखा था, व्यापार में आश्चर्यजनक सफलता।

उसी दिन अनु से मिलने गया।

पति के साथ देहात से लौटते समय बार-बार मलेरिया बुखार में गिर पड़ने से अनु की इस समय ऐसी दशा थी कि डाक्टर लोग डर रहे थे कि उसे क्षय रोग हो गया है। किसी अच्छी जगह पर जाने के लिए कहने पर वह कहती, "मैं तो आज के बाद कल मरूँगी ही, परन्तु अपने सुबोध के रुपयों को मैं नष्ट क्यों करूँ।" इस तरह से वह सुबोध को और सुबोध के रुपयों को अपने प्राणों से लगाकर पाल रही थी।

मैंने जाकर देखा, अनु के रोग ने उसे इस पृथ्वी से अलग कर दिया है। मैं जैसे उसे बहुत दूर से देख रहा हूँ। उसका शरीर एकदम स्वच्छ होकर भीतर से एक आभा बाहर निकल रही है। जो कुछ स्थूल है, उस सबको क्षय करके उसके प्राण मृत्यु के बाहरी दरवाजे पर स्वर्ग के उजाले में आकर खड़े हो गये हैं। और वही हैं उसकी दोनों करुण आँखों की घनी पलकें! आँखों के नीचे स्याही फैल जाने से लगता है, जैसे उसकी दृष्टि के ऊपर जीवनान्तकाल की सन्ध्या की छाया उतर आई है। मेरा समस्त मन स्तब्ध हो गया, आज वह देवी जैसी लगने लगी।

मुझे देखकर अनु के मुख के ऊपर एक शान्त प्रसन्नता की छाया गिरी। वह बोली, "कल रात में मेरी तकलीफ जब बढ़ गई थी, उसी समय से तुम्हारी बाबत ही सोच रही थी। मैं जानती हूँ, मेरे और अधिक दिन नहीं हैं। परसों भैयादूज का दिन है, उस दिन मैं तुम्हें आखिरी भैयादूज दे जाऊँगी।"

रुपये की बात कुछ भी नहीं कही। सुबोध को बुलवा लिया। उसकी आयु सात वर्ष की थी। दोनों आँखें माँ की तरह थीं। सब मिलाकर उसका कैसा एक क्षणिकता का भाव था, पृथ्वी जैसे उसे पूरे परिमाण में स्तन्य देना

भूल गई थी। गोद में खींचकर उसके मस्तक का चुम्बन लिया। वह चुपचाप मेरे मुँह की ओर देखता रहा।

प्रसन्न ने जिज्ञासा की, "क्या हुआ ?"

मैं बोला, "आज मुझे समय नहीं मिला।"

वह बोला, "म्याद में अब केवल नौ दिन ही बाकी हैं।"

अनु का वह मुख, वे मृत्यु सरोवर के पद्म, देखने की अवधि से सर्वनाश मुझे वैसा भयङ्कर नहीं लग रहा था।

कुछ समय से हिसाब-किताब देखना बन्द कर दिया था। किनारा दिखाई नहीं पड़ रहा था, इसीलिए भय से आँखें बन्द किये बैठा था। मुर्दा-सा बनकर हस्ताक्षर किये जा रहा था, समझने की चेष्टा रहीं करता था।

भैयादूज के दिन सुबह ही एक हिसाब की चुम्बक-फर्द लेकर, जबर्दस्ती प्रसन्न ने मुझे कारबार की वर्तमान अवस्था समझा दी। देखा, मूलधन का समस्त तल एकदम सूख गया है। इस समय केवल उधार के रुपयों से पानी सींचकर चले बिना नौका डूब जायगी।

कौशल से रुपयों की बात उठाने का उपाय सोचते-सोचते भैयादूज के निमन्त्रण में चला। दिन वृहस्पतिवार था। इस समय हतबुद्धि की चोट से वृहस्पतिवार से भी भय नहीं कर पाया। जो मनुष्य अभागे होते हैं, अपनी वुद्धि के अतिरिक्त और कुछ भी मानने में उन्हें भरोसा नहीं हो पाता। जाते समय मन बहुत खराब हुआ।

अनु का स्वर बढ़ गया था। देखा, वह बिछौने पर सो रही है। नीचे फर्श के ऊपर चुप बैठा हुआ सुबोध अँग्रेजी के अखबार में से तस्वीरें काटकर, आटा लगाकर एक कापी में चिपका रहा था।

वार-बेला बचाने के लिए समय से वहुत पहले ही आ गया था। बात थी, अपनी स्त्री को भी साथ लाऊँगा। परन्तु, अनु के बारे में मेरी स्त्री के मन के कोने में शायद कुछ ईर्ष्या थी, इसीलिए उसने आते समय बहाना बनाया था, मैंने भी कोई हठ नहीं की थी।

मेरे भीतर किसी दिन जो माधुर्य दिखाई दिया था, उसीको अपने स्वर्णिम-प्रकाश में गलाकर आकाश ने उस रोगी के बिछौने के ऊपर बिछा

दिया था। कितनी ही बातें आज उठ पड़ी थीं। वे ही सब अनेक दिनों की अत्यन्त छोटी बातें मेरे आसन्न सर्वनाश के अतिरिक्त आज कितनी ही बड़ी हो उठीं। कारबार का हिसाब भूल गया।

घर में आकर बैठते ही उसने एक टीन के बक्स को मेरे पास लाकर रख दिया। बोली, "सुबोध के लिए जो कुछ इतने दिनों तक बचा रखा था, तुम्हें दे दिया है, और उसके साथ ही सुबोध को भी तुम्हारे हाथों में दे रही हूँ। अब निश्चिन्त होकर मर सकूँगी।"

मैं बोला, "अनु, तुम्हारी दुहाई है, रुपये मैं नहीं लूँगा। सुबोध की देखभाल में कोई कमी नहीं होगी, परन्तु रुपये किसी और के पास रख दो।"

अनु ने कहा, "इन रुपयों को लेने के लिए कितने ही लोग हाथ फैलाये बैठे हैं। तुम क्या उन्हीं लोगों के हाथ में दे देने के लिए कहते हो ?"

मैं चुप रह गया। अनु बोली, "एक दिन ओट में से सुना था, डाक्टर ने कहा था, सुबोध के जैसे शारीरिक-लक्षण हैं, उसके अधिक दिन बचने की आशा नहीं है। सुनने के समय से ही डरी हुई रहती हूँ। आज आखिरी आशा लेकर मरूँगी कि डाक्टर की बात गलत हो सके। सैंतालीस हजार रुपये कम्पनी के दस्तावेजों में जमा हैं—और भी कुछ इधर-उधर हैं। इन रुपयों से सुबोध के पथ्य और चिकित्सा का काम अच्छी तरह चल सकेगा। और, यदि भगवान अल्पायु में ही उसे खींच लें तो ये रुपये उसके नाम से किसी एक अच्छे काम में लगा देना।"

मैंने कहा, "अनु, मुझ पर तुम जितना विश्वास करती हो, मैं स्वयं पर उतना विश्वास नहीं करता।"

सुनकर अनु जरा-सा हँस दी। मेरे मुँह से ऐसी बात झूठी नम्रता जैसी सुनाई देती थी।

विदा के समय अनु ने बक्स खोलकर कम्पनी के कागज और कुछ नोटों की गड्डियाँ सँभलवा दीं। उसकी वसीयत में देखा तो लिखा था, अपुत्रक और नाबालिग अवस्था में सुबोध की मृत्यु हो जाने पर मैं ही उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी रहूँगा।

मैं बोला, "मेरे स्वार्थ के साथ अपनी सम्पत्ति को इस तरह क्यों सम्बन्धित कर दिया है ?"

अनु ने कहा, "मैं जो जानती हूँ, मेरे लड़के के स्वार्थ में तुम्हारा स्वार्थ किसी दिन बाधा नहीं देगा।"

मैंने कहा, "किसी भी मनुष्य पर इतना विश्वास करना काम का दस्तूर नहीं है।"

अनु ने कहा, "मैं तुम्हें जानती हूँ, धर्म को जानती हूँ, काम का दस्तूर समझने की शक्ति मुझमें नहीं है।"

बक्स के भीतर गहने थे, उन्हें दिखाकर बोली, "सुबोध यदि जीवित रहे और विवाह करे, तो बहू को यह गहने और मेरा आशीर्वाद देना और यह पन्ने की माला बहूरानी (अपनी पत्नी) को देकर कहना, सिर की शपथ है, वे इसे ग्रहण कर लें।"

यह कहकर अनु ने जिस समय पृथ्वी पर सिर रखकर मुझे प्रणाम की, उसकी दोनों आँखों में पानी भर आया। उठकर झटपट खड़ी होकर वह मुँह फिराकर चली गई। यही मुझे उसका अन्तिम प्रणाम मिला था। इसके दो दिन बाद ही सन्ध्या के समय अचानक श्वास बन्द होकर, उसकी मृत्यु हो गई—मुझे खबर भेजने का समय भी नहीं मिला।

भैयादूज का निमन्त्रण समाप्त कर, टीन का बक्स हाथ में लेकर, गाड़ी में चढ़कर, घर के दरबाजे पर जैसे ही उतरा तो देखा—प्रसन्न प्रतीक्षा कर रहा है। जिज्ञासा की, "दादा, खबर अच्छी तो है ?"

मैं बोला, "इन रुपयों से कोई भी हाथ नहीं लगा सकेगा।"

प्रसन्न ने कहा, "किन्तु—"

मैं बोला, "सो नहीं जानता—जो होना है वह हो, यह रुपये मेरे व्यवसाय में नहीं लगेंगे।"

प्रसन्न बोला, "तो तुम्हारे अन्त्येष्ठि संस्कार में लगेंगे।"

अनु की मृत्यु के बाद से सुबोध मेरे मकान में आकर मेरे लड़के नित्य-धन का साथी बन गया।

जो लोग कहानियों की पुस्तकें पढ़ते हैं, वे सोचते हैं, मनुष्य के मन में में बड़े-बड़े परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं। ठीक उलटा है। तम्बाकू सुलगाने की टिकिया को अग्नि पकड़ने में देर लगती है, परन्तु बड़ी-बड़ी लपटें हू-हू करके जल उठती हैं। मैं यह बात यदि कहूँ कि बहुत थोड़े समय के भीतर ही सुबोध के ऊपर मेरे मन का एक विद्वेष देखते-देखते बढ़ गया, तो सभी लोग उसकी विस्तृत कैफियत चाहेंगे। सुबोध अनाथ था, वह बड़ा क्षीण प्राण था, वह देखने में भी सुन्दर था, सबके ऊपर सुबोध की माँ स्वयं अनु थी—परन्तु उसकी बातचीत, चलना, फिर खेलकूद, सभी कुछ जैसे मुझे दिन-रात कुरेदने लगे।

असल में, समय बहुत खराब आ गया था, सुबोध के रुपये किसी तरह भी नहीं लूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी, अथवा रुपया लिये बिना चल नहीं सकता था, ऐसी हालत थी। अन्त में एक दिन महा मुसीबत में पड़कर कुछ ले लिये। इससे मेरे मन की मशीन ऐसी बिगड़ गई कि सुबोध के सामने मुँह दिखाना मुझे भारी हो गया। पहले उससे बचा-बचा रहने लगा। उसके बाद उसके ऊपर बुरी तरह से नाराज रहना आरम्भ कर दिया।

नाराज होने का पहला कारण बना उसका स्वभाव। मैं स्वयं ही व्यस्तवागीश था, सब कामों को चटपट कर डालने की मुझे आदत थी। परन्तु, सुबोध का न जाने कैसा एक तरह का भाव था, उससे प्रश्न करने पर वह उत्तर दे ही नहीं पाता था—जिस जगह वह है, उस जगह जैसे वह नहीं लगता, जैसे वह अन्यत्र कहीं हो। सड़क के किनारे वाली खिड़की के छज्जे पर बैठा हुआ वह घण्टे के बाद घण्टे काट देता; क्या देखता, क्या सोचता, इसे वही जानता। मुझे यह असह्य लगता। सुबोध बहुत समय से रुग्ण माँ के पास रह कर बड़ा हुआ था, समवयस्क खेल का साथी कोई नहीं था; इसीलिए वह बराबर अपने ही मन को लेकर स्वयं ही खेला किया था। इन सब लड़कों की यही कठिनाई होती है कि ये लोग जब दुःख पाते हैं, उस समय अच्छी तरह से रोना भी नहीं जानते, शोक को भूलना भी नहीं जानते। इसीलिए सुबोध को पुकारने पर अचानक आहट नहीं मिल पाती, एवं काम करने के लिए कहने पर

वह भूल जाता। अपनी चीजों को वह केवल खो ही देता, उन्हें लेकर यह बगुले की तरह चुप रहकर मुँह की ओर देखता रहता—जैसे वह देखते रहना ही उसका रुदन हो। मैं कहने लगा, 'इसका दृष्टान्त मेरे लड़के के लिए बहुत खराब है।' फिर मुश्किल यह थी कि इसे देखने की अवधि से नित्य को यह बहुत अच्छा लगा था; उसकी प्रकृति पूर्णरूप से अन्य प्रकार की होने के कारण ही इसके प्रति उसका आकर्षण भी जैसे अधिक हो गया।

दूसरे का स्वभाव-संशोधन मेरे कुल का काम रहा है; इसमें मेरी पटुता भी जैसी है, उत्साह भी वैसा ही है। सुबोध का स्वभाव कर्मपटु नहीं था, इसीलिए मैं उससे खूब कसकर काम कराने में लग गया। जितनी बार भी वह भूल करता, उतनी ही बार स्वयं को लगाकर उसकी उस भूल का सुधार करवा लेता।

फिर उसकी एक और आदत थी, वह उसकी माँ की भी थी—वह स्वयं की एवं अपने चारों ओर की अनेक तरह से कल्पना करता था। खिड़की के सामने ही जो अमरूद का पेड़ था, उसको उसने न जाने क्या एक अद्‌भुत नाम दिया था; पत्नी से सुना था कि अकेला खड़ा होकर उस पेड़ के साथ वह बातें करता था। बिछौनों को मैदान और तकियों को गाय का पात्क समझ कर सोने के कमरे में बैठ कर ग्वालों की जो कितनी ही व्यर्थ की बातें होती थीं, उन्हें उसके स्वयं के मुख से कबूल कराने की अनेक चेष्टाएँ की थीं—वह उत्तर ही नहीं देता था। मैं जितना ही उस पर शासन करता, मेरे समीप उसकी त्रुटियाँ उतनी ही बढ़ जातीं। मुझे देखते ही वह घबरा जाता, मेरे मुँह की स्पष्ट बात भी वह नहीं समझ पाता था।

और कुछ नहीं, हृदय यदि नाराज होना आरम्भ कर देता है और स्वयं को सँभाल पाने जैसा बाहर से कोई धक्का यदि वह नहीं पाता, तो नाराजी स्वयं ही बढ़ती चलती है, नये कारण की अपेक्षा नहीं रखती। यदि ऐसे मनुष्य को दो-चार बार मूर्ख कहा जाय, जिसे उत्तर देने की हिम्मत न हो तो वह दो-चार बार कहने पर ही पाँचवीं बार मुसीबत खड़ी कर देता है, किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। सुबोध के ऊपर केवल नाराज हो उठने

का मेरे मन को ऐसा अभ्यास हो गया कि उसे त्याग पाना मेरे लिए सम्भव ही नहीं था।

इस तरह पाँच वर्ष बीत गये। सुबोध की आयु जब बारह की थी, उस समय कम्पनी के कागज एवं गहनों को गला कर मेरे हिसाब के खाते में कितने ही स्याही के अङ्क में परिणत हो गये।

मन को समझाया, अनु ने तो वसीयत में मुझे रुपये दिये हैं। बीच में सुबोध है अवश्य, परन्तु वह तो छाया है, न होने जैसा ही कहा जायगा। जिन रुपयों को अवश्य ही प्राप्त करूँगा, उन्हें पहले से ही खर्च कर देने में अधर्म नहीं होगा।

अल्पायु से मुझे वात की बीमारी थी। कुछ दिनों से वह अत्यन्त बढ़ गई थी। जो लोग काम के आदमी होते हैं, उन्हें यदि स्थिर रखा जाय तो वे अपने चारों ओर के सभी लोगों को अस्थिर कर डालते हैं। उन कुछ दिनों में मेरी स्त्री, मेरा लड़का, सुबोध, घर के नौकर-चाकर किसी को भी शक्ति नहीं रही थी।

इस ओर मेरी परिचित जिन कुछ विधवा स्त्रियों ने मेरे पास रुपये रख छोड़े थे, कई महीनों से उन्हें ब्याज मिलना बन्द था। पहले ऐसा कभी नहीं होने दिया था। इसीलिए वे सब उद्विग्न होकर मुझ से तगादा कर रही थीं। मैं प्रसन्न से तगादा करता था, वह केवल दिन टाल रहा था। अन्त में जिस दिन निश्चित रूप से देने की बात थी, उस दिन सुबह से ही तगादे वाली बैठी थीं, प्रसन्न का पता नहीं था।

नित्य से बोला, "सुबोध को बुला दो।"

वह बोला, "सुबोध सो रहा है।"

मैं अत्यन्त नाराज होकर बोला, "सो रहा है! अब ग्यारह बज रहे हैं, अब भी वह सो रहा है!"

सुबोध डरता-डरता आ उपस्थित हुआ। मैं बोला, "प्रसन्न को जहाँ भी पाओ, बुला लाओ।"

सदैव मेरी फरमाइश पर मेहनत करके सुबोध इन सब कामों में पक्का हो गया था। किसे किस जगह ढूंढ़ना होगा, सब कुछ उसे मालूम था।

एक बज गया, दो बज गये, तीन हो गये, सुबोध फिर नहीं लौटा। इधर जो लोग धरना दिये बैठी थीं, उनकी भाषा का ताप एवं वेग बढ़ उठने लगा। किसी तरह भी सुबोध की ढिलमिल चाल को मिटा नहीं सका था। दिन जितना बीतता था, उतनी ही उसकी ढील और भी जैसे बढ़ उठती थी। आजकल वह बैठ पाने पर उठना नहीं चाहता था, शाम को पाँच बजे के समय पर ही वह बिछौने पर लेट जाता था; सुबह उसे बिछौने से जबर्दस्ती उठा देना पड़ता था; चलने के समय जैसे पाँव से पाँव जोड़ कर चलता था। मैं सुबोध से कहता था, जन्म का आलसी, आलसीपन का महामहोपाध्याय, वह लज्जित होकर चुप रह जाता। एक दिन उससे कहा था, "बता तो सही, प्रशान्त महासागर के पार कौन-सा महासागर है।" जब वह जवाब नहीं दे पाया, मैं बोला, "वह तुम हो, आलस्य महासागर।" जहाँ तक होता सुबोध किसी दिन मेरे पास रोता नहीं था; परन्तु उस दिन उसकी आँखों से भार-भारकर पानी गिरने लगा। वह मार, गाली सब कुछ सह सकता था, परन्तु व्यंग्य उसके मर्मस्थल पर जाकर चोट करता था।

समय बीता। रात हुई। घर में किसी ने बत्ती नहीं जलाई। मैंने चीख-पुकार की, किसी ने उत्तर नहीं दिया। घर के सभी लोगों पर मुझे नाराजी हुई। उसके बाद अचानक मुझे सन्देह हुआ, शायद प्रसन्न ने ब्याज के रुपये सुबोध के हाथ में दे दिये होंगे। सुबोध उन्हें लेकर भाग गया है। मेरे घर में सुबोध को जो आराम नहीं था, वह मैं जानता था। बचपन से ही आराम नामक वस्तु को अन्याय के रूप में ही समझता रहा था, विशेषकर छोटे लड़कों के लिए। इसीलिए इस बारे में मेरे मन में कोई परिताप नहीं था। परन्तु, उसी के कारण सुबोध रुपये लेकर भाग जा सकता है, यह सोचकर मैं उसे कपटी, अकृतज्ञ कहकर मन ही मन गाली देने लगा। इसी आयु में चोरी आरम्भ कर दी, इसकी गति क्या होगी! मेरे पास रहकर, हमारे मकान में निवास करके भी उसकी ऐसी शिक्षा कैसे हुई! सुबोध रुपये चुराकर भाग गया है, इस बारे में मेरे मन में कोई सन्देह नहीं रहा। इच्छा हुई, पीछे दौड़कर उसे जहाँ भी पाऊँ, पकड़ लाऊँ, एवं आपाद मस्तक एक बार कसकर मार लगाऊँ।

इसी समय मेरे अँधेरे कमरे में सुबोध ने आकर प्रवेश किया। उस समय मुझे ऐसा क्रोध आ रहा था कि चेष्टा करने पर भी मेरे कण्ठ से बात बाहर नहीं निकली।

सुबोध बोला, "रुपये नहीं मिले।"

मैंने तो सुबोध से रुपये लाने को कहा नहीं था, तब उसने क्यों कहा, 'रुपये नहीं मिले।' अवश्य ही रुपये चुरा लिये हैं—कहीं छिपा दिये हैं। ये सब भले लगने वाले लड़के ही भारी शैतान होते हैं।

मैंने बड़े कष्ट से गले को साफ करके कहा, "रुपये बाहर निकाल दे!"

उसने भी उद्धत होकर कहा, "नहीं, नहीं दूँगा, तुम क्या कर सकते हो, करो!"

मैं और किसी तरह भी स्वयं को नहीं सँभाल पाया। हाथ के पास लाठी थी, जोर से उसके सिर को लक्ष्य करके मारी। वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा। उस समय मुझे डर लगा। नाम लेकर पुकारा, उसने उत्तर नहीं दिया। पास जाकर देख सकूँ, ऐसी शक्ति मुझ में नहीं रही। किसी तरह भी उठ नहीं सका। टटोलते हुए जाकर देखा, जाजिम भीग गई थी। यह तो रक्त था। क्रमशः रक्त फैलने लगा। क्रमशः मैं जिस जगह था उसके चारों ओर रक्त से जमीन भींग उठी। मेरी खुली खिड़की के बाहर से सन्ध्यातारा दिखाई दे रहा था; मैंने झटपट आँखें फेर लीं; मुझे अचानक न जाने कैसे याद आ गया, सन्ध्या तारा भैया दूज का वही चन्दन का तिलक है। सुबोध के ऊपर मेरा इतने दिनों का जो अनुचित विद्वेष था, वह एक क्षण में ही नष्ट हो गया। वह जैसे अनु के हृदय का धन है; माँ की गोद से भ्रष्ट होकर वह मेरे हृदय में मार्ग ढूँढ़ने को आया था। मैंने यह क्या किया! यह क्या किया! भगवान्, मुझे यह कैसी बुद्धि दे दी! मुझे रुपयों की क्या आवश्यकता थी! अपने सब कारबार को खत्म करके संसार में केवल इसी रुग्ण बालक के समीप यदि धर्म को बचाये रहता तो मैं रक्षा पा लेता।

क्रमशः भय होने लगा कि कोई आ जायेगा, पीछे पकड़ा जाऊँगा। प्राणपण से इच्छा होने लगी, कोई जैसे न आये, दीपक को जैसे न लाये; यह अंधेरा जैसे क्षणभर के लिए भी दूर न हो, जैसे कल सूर्य न निकले, जैसे

विश्व-संसार एकदम मिथ्या होकर इस तरह से घनाकाला होकर मुझे और इस लड़के को चिरदिनों के लिए ढाँके रहे।

पाँव का शब्द सुना। लगा, किसी तरह से पुलिस को खबर मिल गई है। कौन-सी झूठी कैफियत दूँगा, झटपट उसीको सोच लेने की चेष्टा की, परन्तु मन कुछ भी नहीं सोच सका।

धड़ाम करके दरवाजा खुल गया, घर में किसी ने प्रवेश किया।

मैं सिर से पाँव तक चौंक उठा। देखा, उस समय भी धूप थी। सो गया था; सुबोध के घर में घुसते ही मेरी नींद टूट गई थी।

सुबोध हाटखोला, बड़ाबाजार, बेलेघाटा आदि जहाँ-जहाँ पर प्रसन्न के मिलने की सम्भावना थी, सारे दिन सब जगह ढूँढ़ता रहा था। हर तरह की कोशिश के बावजूद भी उसे ला नहीं सका था, इस अपराध के भय से उसका मुँह म्लान हो गया था। इतने दिनों बाद देखा, कैसा सुन्दर है उसका मुँह, कैसी करुणा से भरी हुई हैं उसकी दोनों आँखें।

मैं बोला, "आ, बेटा सुबोध, आ मेरी गोद में आजा!"

यह मेरी बात को समझ ही नहीं सका; सोचा, मैं व्यंग्य कर रहा हूँ। फटी-फटी आँखों से मुँह की ओर देखता रहा और कुछ देर खड़े रहने के बाद मूर्छित होकर गिर पड़ा।

क्षण भर में मेरी वात रोग की पंगुता कहाँ चली गई। मैंने दौड़कर, गोद में लेकर उसे बिछौने पर लाकर लिटा दिया। सुराही में पानी था, उसके मुँह और माथे पर छींटे दिये, किसी तरह भी उसे होश नहीं आया।

डाक्टर बुलवाने के लिए भेजा।

डाक्टर आकर उसकी हालत देखकर विस्मित हो गये। बोले, "यह तो एक दम थकावट की चरम सीमा पर आ पहुँचा है। किस तरह से ऐसा होना सम्भव हुआ?"

मैं बोला, "आज किसी कारणवश सारे दिन उसे परिश्रम करना पड़ा है।"

वे बोले, "यह तो एक दिन का काम नहीं रहा है। लगता है दीर्घकाल से इसे क्षय चल रहा है, किसी ने लक्ष्य नहीं किया।"

उत्तेजक औषधि और पथ्य देकर डाक्टर उसे चैतन्य करके चले गये। बोले, "बड़े यत्न से यदि दैवात् बच जाय तो ही बचेगा, परन्तु इसके शरीर में प्राणशक्ति समाप्त हो चुकी है। लगता है, अन्तिम कुछ दिनों में यह लड़का केवल मात्र मन के जोर से ही चलता-फिरता रहा है।"

मैं अपना रोग भूल गया। सुबोध को अपने बिछौने पर सुलाकर दिन-रात उसकी सेवा करने लगा। डाक्टरों को फीस देने योग्य रुपये मेरे घर में नहीं थे। स्त्री के गहनों का बक्स खोला। उस पन्ने की माला को उठाकर स्त्री को देते हुए कहा, "इसे तुम रखो।" बाकी सबको लेकर गिरवी रखकर रुपये ले आया।

परन्तु रुपयों से तो मनुष्य बचता नहीं। उसके प्राणों को तो मैंने प्रतिदिन पकड़कर, दलकर समाप्त कर दिया था। जिस स्नेह के अन्न से उसे दिन प्रतिदिन वञ्चित कर रखा था, आज जब उसे हृदय भरकर उसे लाकर दिया, उस समय उसे ग्रहण नहीं कर सका। खाली हाथ अपनी माँ के पास वह लौट गया।

हेमन्ती

कन्या के पिता सब्र करते थे, परन्तु वर के पिता ने सब्र नहीं करना चाहा। उन्होंने देखा, लड़की की विवाह की उम्र पार हो चुकी है, परन्तु और कुछ दिन बीतने पर उसे अच्छे या बुरे किसी उपाय से भी दबाये रखने का समय भी निकल जायेगा। लड़की की आयु अवैध प्रकार से बढ़ अवश्य गई थी, परन्तु दहेज के रुपयों का आपेक्षिक गुरुत्व भी इस समय उसकी अपेक्षा कुछ ऊपर ही था, इसीलिए पीछा किया जा रहा था।

मैं था वर। सुतरां, विवाह के बारे में मेरे मत को जानना अनावश्यक था। अपना काम मैंने कर लिया था। एफ० ए० पास करके छात्रवृत्ति पाई थी। इसीलिए प्रजापति के दोनों पक्ष, कन्या पक्ष और वर पक्ष, रह-रह कर विचलित हो उठे।

हमारे देश में जो मनुष्य एक बार विवा कर चुका होता है, विवाह के बारे में उसके मन में अन्य कोई उद्वेग नहीं रहता। नर-मांस का स्वाद पाकर मनुष्य के बारे में बाघ की जो दशा होती है, स्त्री के बारे में उसके भाव वैसे ही हो उठते

हैं। अवस्था कैसी भी और आयु भी कितनी ही हो, स्त्री का अभाव होते ही उसकी पूर्त्ति कर लेने में उसे कोई द्विधा नहीं रहती। जितनी द्विधा और दुश्चिन्ता होती है, वह हम नये छात्रों को ही रहती है। विवाह के पौन:पुनिक (बारम्बार के) प्रस्ताव पर उनके पितृ पक्ष के सफेद बाल खिजाब के आशीर्वाद से पुन:-पुन: काले हो उठते हैं, और पहले रिश्ते की आँच से ही इन लोगों के काले बाल विचार करते ही एक रात में सफेद हो जाने का उपक्रम कर बैठते हैं।

सच कहता हूँ, मेरे मन में ऐसा विषम उद्वेग जाग्मा ही नहीं। वरंच विवाह की बात से मेरे मन के भीतर जैसे दक्षिणी हवा बहने लगी। कौतूहली कल्पना के किसलयों में जैसे एक कानाफूँसी होने लगी। जिसे वार्क के फ्रेंच रेवोलूशन के नोट्स की पाँच-सात कॉपियाँ कण्ठस्थ करनी पड़ें, उसके लिए यह भाव दोष के रूप में हैं। मेरी इस रचना के बारे में यदि टैक्स्टबुक कमेटी की अनुमति लेने की कोई आशङ्का रहती, तो सावधान हो जाता।

परन्तु, यह क्या कर रहा हूँ ? यह क्या कोई कहानी है जो उपन्यास लिखने बैठ गया, ऐसे स्वर में मेरी रचना शुरू होगी, इसे क्या मैं जानता था ! मन में था, कई वर्षों की वेदना के जो मेघ काले होकर घिर गये हैं, उन्हें वैशाख सन्ध्या की मूसलाधार वर्षा की भाँति प्रबल वर्षण से नि:शेष कर डालूँगा। परन्तु, नहीं लिख सका बंगला भाषा में शिशु पाठ्य की पुस्तक, कारण, संस्कृत मुग्धबोध व्याकरण मेरा पढ़ा हुआ नहीं है—और, न कर पाया काव्य-रचना, कारण, मातृभाषा मेरे जीवन में ऐसी पुष्पित नहीं हो उठी है, जिससे स्वयं के हृदय को बाहर खींचकर ला सकूँ। इसीलिए देख रहा हूँ, मेरे भीतर का श्मशानचारी संन्यासी अट्टहास्य से अपना ही परिहास करने बैठा है। बिना किये, करेगा क्या। उसके आँसू जो सूख गये हैं। जेठ की प्रखर धूप ही तो जेठ मास का अश्रुशून्य रुदन है।

मेरे साथ जिसका विवाह हुआ था, उसका सच्चा नाम नहीं दूँगा। कारण, पृथ्वी के इतिहास में उसके नाम को लेकर पुरातत्वशास्त्रियों में विवाद होने की कोई अशङ्का नहीं है। जिस ताम्रपत्र पर उसका नाम खुदा हुआ है, वह मेरा हृदय-पट है। किसी भी समय में वह पट एवं वह नाम विलुप्त हो

जायगा, ऐसी बात मैं सोच भी नहीं पाता हूँ। परन्तु, जिस अमृत लोक में वह अक्षय बना रहेगा, उस जगह ऐतिहासिकों का आवागमन नहीं है।

मेरी इस रचना में उसका जैसा भी हो एक नाम चाहिए। अच्छा, उसका नाम रख दिया शिशिर। क्योंकि, शिशिर में रुदन-हँसी एकदम एक हो जाते हैं, और शिशिर में सुबह की बात सन्ध्या काल में आकर समाप्त हो जाती है।

शिशिर मुझसे केवल दो वर्ष छोटी थी। अथच, मेरे पिता गौरीदान के पक्षपाती नहीं थे, ऐसी बात नहीं थी। उनके पिता (मेरे बाबा) थे उग्रभाव से समाज-विद्रोही, देश के प्रचलित धर्म-कर्म में उनकी तनिक भी आस्था नहीं थी; उन्होंने कसकर अँग्रेजी पढ़ी थी। मेरे पिता उग्रभाव से समाज के अनुगामी थे; मानने में उन्हें बाधा दे, ऐसी वस्तु हमारे समाज में, सदर में अथवा अन्दर में, ड्योढ़ी अथवा खिड़की की राह में, ढूँढ पाना भी मुश्किल था, कारण, इन्होंने भी कसकर अँग्रेजी पढ़ी थी। पितामह एवं पिता दोनों ही मतामत के विद्रोह की दो विभिन्न मूर्तियाँ थीं। कोई भी सरल स्वाभाविक नहीं था। फिर भी बड़ी आयु की लड़की के साथ पिताजी ने जो मेरा विवाह किया उसका कारण, लड़की की आयु अधिक होने के कारण ही दहेज का अङ्क भी बड़ा था। शिशिर मेरे श्वसुर की एकमात्र लड़की थी। पिता का विश्वास था, कन्या के पिता के सब रुपये भावी जामाता के भविष्य के गर्भ को पूर्ण करने में लगे हैं।

मेरे श्वसुर को किसी-एक विशेष मत की बला नहीं थी। वे पश्चिम के एक पहाड़ के किसी राजा के अधीन बड़ा काम करते थे। शिशिर जब गोद में थी, तभी उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी। लड़की वर्ष की समाप्ति पर एक-एक वर्ष करके बड़ी हो रही है, यह बात मेरे श्वसुर की आँख में ही नहीं पड़ी। उस जगह उनके समाज का आदमी ऐसा कोई भी नहीं था कि उनकी आँख में उँगली लगाकर दिखा देता।

शिशिर की आयु यथासमय सोलह वर्ष की हुई; परन्तु वह स्वभाव की सोलह थी, समाज की सोलह नहीं थी। कोई उसे अपनी आयु के बारे में

सतर्क होने का परामर्श नहीं देता था, वह भी अपनी आयु की ओर लौट कर नहीं देखती थी।

कॉलिज के तृतीय वर्ष में पाँव रखा था, मेरी आयु उन्नीस वर्ष की थी, इसी समय में मेरा विवाह हुआ। आयु समाज के मत अथवा सामाजिक संस्कार के मत में उपयुक्त थी या नहीं, उसे लेकर उसके दोनों पक्ष लड़ाई करके खूनखराबी करके मर जायें, परन्तु मैं कहता हूँ, वह आयु परीक्षा पास करने के लिए कितनी भी अच्छी हो, विवाह का सम्बन्ध आने के पक्ष में तनिक भी कम अच्छी नहीं थी।

विवाह का अरुणोदय हुआ एक फोटोग्राफ के आभास से। पाठ कण्ठस्थ कर रहा था। एक मजाक के रिश्तेवाली आत्मीया मेरी टेबुल के ऊपर शिशिर की तस्वीर रखती हुई बोलीं, "इस बार सच्ची पढ़ाई पढ़ो—एकदम गर्दन को घुमा-फिरा कर।"

किसी एक अनाड़ी कारीगर की खींची हुई तस्वीर थी। माँ थी नहीं, सुतरां किसी ने उसके केश खींच कर बाँधते हुए, जरी लगी हुई, साहा अथवा मल्लिक कम्पनी की बेडौल जाकिट पहना कर, वरपक्ष की आँखों को भुलावे में डालने के लिए जालसाजी का प्रयत्न नहीं किया था। एक भारी सीधा-सादा मुँह, सीधी-सादी दो आँखें, एवं सीधी-सादी एक साड़ी। परन्तु, कुल मिलाकर क्या महिमा थी, उसे मैं कह नहीं सकूँगा। जैसे-तैसे एक चौकी पर बैठकर, पीछे कुछ डोरे के दागों से कटे हुए शतरंज का पर्दा, बगल में एक तिपाई के ऊपर फूलदानी में फूल का गुच्छा। और गलीचे के ऊपर साड़ी की तिरछी किनारी के नीचे दो नंगे पाँव।

पर्दे की तस्वीर पर मेरे मन की स्वर्ण-शलाका लगते ही वह मेरे जीवन के भीतर जग उठी। वे दोनों काली आँखें मेरे सम्पूर्ण भावनाओं के भीतर किसी तरह से देखती ही रहीं। और, वह तिरछी किनारी के नीचे के दोनों नंगे पाँव मेरे हृदय को अपना पद्मासन कर बैठे।

पञ्चाङ्ग के पन्ने उल्टे जा रहे थे; दो-तीन विवाह की लग्न पीछे जा रही थीं, श्वसुर को तब छुट्टी नहीं मिल सकती थी। उस ओर सामने एक अशुभ मुहूर्त चार-पाँच महीनों को मिला कर, मेरी क्वारी आयु की सीमा को

उन्नीसवें वर्ष में से निरर्थक बीसवें वर्ष की ओर ठेल देने का षड्यन्त्र कर रहा था। श्वसुर के और उनके मालिक के ऊपर नाराजी होने लगी।

जो भी हो, अशुभ लग्न से ठीक पहले की लग्न में आकर विवाह का दिन निश्चित हुआ। उस दिन की शहनाई की प्रत्येक तान मुझे याद आ रही है। उस दिन के प्रत्येक मुहूर्त को मैंने अपने सम्पूर्ण चैतन्य के द्वारा स्पर्श किया था। मेरी वह उन्नीस वर्ष की आयु मेरे जीवन में अक्षय होकर रहे।

विवाह मण्डप में चारों ओर जमघट था; उसी के बीच कन्या के कोमल हाथ मेरे हाथ के ऊपर रखे गये। ऐसा आश्चर्य और क्या है। मेरा मन बारम्बार कहने लगा, "मैंने पा लिया, मैंने इसे पा लिया।"

किसे पा लिया। यही जो दुर्लभ है, यह जो मानवी है, इसके रहस्य का क्या अन्त है।

मेरे श्वसुर का नाम गौरीशङ्कर था। वे हिमालय पर रहते थे, वह हिमालय ही जैसे उनका मित्र था। उनके गाम्भीर्य के शिखर देश पर एक स्थिर हास्य शुभ्र हो गया था। और, उनके हृदय के भीतर स्नेह का जो एक झरना था, उसकी खबर जो लोग जानते थे, वे लोग उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे।

कर्म-क्षेत्र में (नौकरी पर) लौटने से पूर्व मेरे श्वसुर ने मुझे बुलाकर कहा, "बेटा, अपनी लड़की को मैं सत्रह वर्ष से जानता आ रहा हूँ, और तुम्हें इन कुछ दिनों से ही जाना है। फिर भी तुम्हारे हाथों में ही सौंप दी है। जो धन दिया है उसका मूल्य समझ सको, इससे अधिक आशीर्वाद और नहीं है।"

उनके सम्बन्धी-रिश्तेदार सभी ने उन्हें बारम्बार आश्वासन देते हुए कहा, "समधी, मन में किसी तरह की चिन्ता मत करो। तुम्हारी लड़की जिस तरह पिता को छोड़कर आई है, इस जगह उसी तरह पिता और माँ दोनों को ही पा लिया है।"

उसके बाद श्वसुर महाशय लड़की के पास से विदा लेते समय हँसे, बोले, "बिटिया, जा रहा हूँ। तेरा एकमात्र यह पिता ही रह गया है, आज से इसका यदि कुछ खो जाय या चोरी चला जाय अथवा नष्ट हो जाय तो मैं उसका उत्तरदायी नहीं हूँ।"

पुत्री बोली, "यही सही, कहीं भी ज़रा-सा यदि नुकसान होगा तो तुम्हें उसकी क्षतिपूर्त्ति करनी होगी।"

अन्त में प्रतिदिन उन्हें जिन सब विषयों में गड़बड़ हो जाती थी, पिता को उनके सम्बन्ध में उसने बार-बार सतर्क कर दिया। आहार के बारे में मेरे श्वसुर यथेष्ट समय नहीं रख पाते थे—कई एक वस्तुएँ जो अपथ्य थीं, उनके प्रति उनकी विशेष आसक्ति रहती थी—पिता को उन सब प्रलोभनों से यथासम्भव बचाये रखना पुत्री का एक काम था। इसीलिए आज पिता का हाथ पकड़कर उद्वेग के साथ बोली, "पिताजी, तुम मेरी बात रखना—रखोगे ?"

पिता ने हँसकर कहा, "मनुष्य प्रण करके प्रण तोड़ देता है साँस लेने के लिए, अतएव वचन न देना ही सबसे अधिक निरापद है।"

उसके बाद पिता के चले आने पर कमरे का दरवाजा बन्द हो गया। उसके बाद क्या हुआ कोई नहीं जानता।

पिता और पुत्री के अश्रुहीन विदाई-व्यापार को बगल के कमरे में से कौतूहली अन्त:पुरिकाओं के एक दल ने देखा और सुना। अवाक् काण्ड था ! उजड्डों के देश में रहकर उजड्ड हो गये हैं ! माया ममता एकदम ही नहीं है !

मेरे श्वसुर के मित्र वनमाली बाबू ने हमारे विवाह का सम्बन्ध सम्पन्न कराया था। वे हमारे परिवार के भी परिचित थे। उन्होंने मेरे श्वसुर से कहा था, "संसार तुम्हारी तो यही एक लड़की है। अब इसी के बगल में मकान लेकर यहीं रहकर जीवन काट दो।"

वे बोले "जिसे दे दिया है, उसे उजाड़ कर ही दिया है। अब लौटकर देखने से दुःख पाना होगा। अधिकार छोड़ देने के बाद अधिकार बनाये रखने जैसी विडम्बना और नहीं है।"

सबसे अन्त में मुझे एकान्त में लेजाकर अपराधी की भाँति संकोच पूर्वक बोले, "मेरी लड़की को पुस्तकें पढ़ने का शौक है और लोगों को भोजन कराना भी उसे बहुत अच्छा लगता है। इसलिए समधी को नाराज करने की

इच्छा नहीं होती। मैं बीच-बीच में तुम्हें रुपये भेजूँगा। तुम्हारे पिता को यदि पता चल जाय तो क्या वे नाराज होंगे ?"

प्रश्न सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ। संसार में किसी एक ओर से अर्थ-समागम होने पर पिताजी नाराज होंगे, उनका मिजाज ऐसा खराब तो देखा नहीं है।

जैसे घूँस दे रहे हों, इस भाव से मेरे हाथ में एक सौ रुपये का नोट रखते हुए मेरे श्वसुर शीघ्रता से प्रस्थान कर गये; मेरा प्रणाम लेने के लिए भी सब्र नहीं किया। पीछे से देखा, इस बार जेब में से रूमाल बाहर निकाला।

मैं स्तब्ध होकर बैठा-बैठा सोचने लगा। मन में समझा, ये लोग अन्य जाति के मनुष्य हैं।

मित्रों में से अनेकों को विवाह करते देखा है। मन्त्र पढ़े जाने के साथ-साथ ही स्त्री को एकदम एक ही ग्रास में गले से नीचे उतार जाते हैं। पाकयन्त्र (पेट) में पहुँच कर कुछ क्षण बाद ही इस पदार्थ के अनेक गुण-अवगुण प्रकट हो पाते हैं एवं क्षण-क्षण पर आभ्यन्तरिक उद्वेग भी उपस्थित होता रहता है, परन्तु मार्ग में कहीं भी कोई बाधा नहीं पड़ती। परन्तु मैंने विवाह-मण्डप में ही समझ लिया था, दान के मन्त्र से स्त्री को जितना पाया जाता है, उससे गृहस्थी चलती है, परन्तु पन्द्रह आना प्राप्त करना बाकी रह जाता है। मुझे सन्देह होता है, अधिकांश लोग स्त्री से विवाहमात्र करते हैं, उसे पाते नहीं हैं, एवं जानकर भी नहीं प्राप्त कर पाते; उन लोगों की स्त्रियों को भी मृत्यु-पर्यन्त इसका पता नहीं चल पाता। परन्तु, वह तो मेरी साधना का धन थी; वह मेरी सम्पत्ति नहीं थी, वह मेरी सम्पद थी।

शिशिर—नहीं, इस नाम का व्यवहार करना अब नहीं चलेगा। प्रथम तो यह उसका नाम नहीं है, इसलिए यह उसका परिचय भी नहीं है। वह सूर्य की भाँति ध्रुव है; वह क्षण जीवनी उषा के विदाकाल की अश्रु-बूँद नहीं है। क्या होगा छिपाये रखकर। उसका असल नाम हेमन्ती है।

देखा, इस सत्रह वर्ष की लड़की के ऊपर यौवन का सम्पूर्ण प्रकाश आ पड़ा है, परन्तु अभी तक वह किशोरावस्था से जगकर नहीं उठी है। ठीक जैसे शैल शिखर की बर्फ के ऊपर सुबह का प्रकाश बिखर पड़ा हो, परन्तु बर्फ

अभी तक गली न हो। मैं जानता हूँ, कैसी अकलङ्क शुभ्र है वह, कैसी निविड़ पवित्र है।

मेरे मन में एक चिन्ता थी कि पढ़ी-लिखी बड़ी लड़की है, क्या पता किस तरह से उसके मन को प्राप्त करना पड़ेगा। परन्तु, बहुत थोड़े दिनों में ही देख लिया, मन की सड़क के साथ पुस्तकों की दूकान की सड़क की किसी भी जगह कोई काटाकाटी नहीं है। कब उसके सादा मन के ऊपर एक रंग चढ़ गया, आँखों में एक नींद जग गई, कब उसका सम्पूर्ण शरीर-मन जैसे उत्सुक हो उठा, उसे ठीक-ठीक कह नहीं सकता।

यह तो हुई एक ओर की बात। अब दूसरी ओर की भी है, उसे विस्तारपूर्वक कहने का समय आ गया है।

राजसंसार में मेरे श्वसुर की नौकरी थी। बैंक में उनके कितने रुपये जमा हैं, इस सम्बन्ध में जनश्रुति ने अनेक प्रकार के अङ्कपात किये थे, परन्तु कोई भी अङ्क लाख के नीचे नहीं झुकता था। इसका फल हुआ था यही कि उसके पिता की कीमत जैसे-जैसे बढ़ी, हेम का सम्मान भी उतना ही बढ़ता रहा था। हमारे घर के काम-काज की रीति-पद्धति सीख लेने के लिए वह व्यग्र थी, परन्तु माँ ने उसे अत्यन्त स्नेह से किसी में भी हाथ नहीं लगाने दिया। यही क्यों, हेम के साथ ही पहाड़ से जो दासी आई थी, यद्यपि उसे अपने कमरे में नहीं घुसने देती थीं, फिर भी उसकी जाति के बारे में प्रश्न तक नहीं किया कि पीछे कहीं अरुचिकर उत्तर न सुनना पड़े।

इसी तरह दिन बीते जा सकते थे, परन्तु अचानक एक दिन पिताजी के मुँह पर घोर अँधेरा दिखाई पड़ा। मामला यह था—मेरे विवाह में मेरे श्वसुर ने पन्द्रह हजार रुपये नकद एवं पाँच हजार रुपये के गहने दिये थे। पिताजी को अपने एक दलाल-मित्र से खबर मिली कि इसमें हजार रुपये उधार लेकर इकट्ठे किये गये हैं, उसकी ब्याज भी नितान्त साधारण नहीं है। लाख रुपये की अफवाह तो एकदम धोखा थी।

यद्यपि मेरे श्वसुर की सम्पत्ति की मात्रा के बारे में मेरे पिता के साथ उनकी किसी भी दिन कोई बात नहीं हुई थी, फिर भी पिताजी ने न जाने

इच्छा नहीं होती। मैं बीच-बीच में तुम्हें रुपये भेजूँगा। तुम्हारे पिता को यदि पता चल जाय तो क्या वे नाराज होंगे ?"

प्रश्न सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ। संसार में किसी एक ओर से अर्थ-समागम होने पर पिताजी नाराज होंगे, उनका मिजाज ऐसा खराब तो देखा नहीं है।

जैसे घूँस दे रहे हों, इस भाव से मेरे हाथ में एक सौ रुपये का नोट रखते हुए मेरे श्वसुर शीघ्रता से प्रस्थान कर गये; मेरा प्रणाम लेने के लिए भी सब्र नहीं किया। पीछे से देखा, इस बार जेब में से रूमाल बाहर निकाला।

मैं स्तब्ध होकर बैठा-बैठा सोचने लगा। मन में समझा, ये लोग अन्य जाति के मनुष्य हैं।

मित्रों में से अनेकों को विवाह करते देखा है। मन्त्र पढ़े जाने के साथ-साथ ही स्त्री को एकदम एक ही ग्रास में गले से नीचे उतार जाते हैं। पाकयन्त्र (पेट) में पहुँच कर कुछ क्षण बाद ही इस पदार्थ के अनेक गुण-अवगुण प्रकट हो पाते हैं एवं क्षण-क्षण पर आभ्यन्तरिक उद्वेग भी उपस्थित होता रहता है, परन्तु मार्ग में कहीं भी कोई बाधा नहीं पड़ती। परन्तु मैंने विवाह-मण्डप में ही समझ लिया था, दान के मन्त्र से स्त्री को जितना पाया जाता है, उससे गृहस्थी चलती है, परन्तु पन्द्रह आना प्राप्त करना बाकी रह जाता है। मुझे सन्देह होता है, अधिकांश लोग स्त्री से विवाहमात्र करते हैं, उसे पाते नहीं हैं, एवं जानकर भी नहीं प्राप्त कर पाते; उन लोगों की स्त्रियों को भी मृत्यु-पर्यन्त इसका पता नहीं चल पाता। परन्तु, वह तो मेरी साधना का धन थी; वह मेरी सम्पत्ति नहीं थी, वह मेरी सम्पद थी।

शिशिर—नहीं, इस नाम का व्यवहार करना अब नहीं चलेगा। प्रथम तो यह उसका नाम नहीं है, इसलिए यह उसका परिचय भी नहीं है। वह सूर्य की भाँति ध्रुव है; वह क्षण जीवनी उषा के विदाकाल की अश्रु-बूँद नहीं है। क्या होगा छिपाये रखकर। उसका असल नाम हेमन्ती है।

देखा, इस सत्रह वर्ष की लड़की के ऊपर यौवन का सम्पूर्ण प्रकाश आ पड़ा है, परन्तु अभी तक वह किशोरावस्था से जगकर नहीं उठी है। ठीक जैसे शैल शिखर की बर्फ के ऊपर सुबह का प्रकाश बिखर पड़ा हो, परन्तु बर्फ

अभी तक गली न हो। मैं जानता हूँ, कैसी अकलङ्क शुभ्र है वह, कैसी निविड़ पवित्र है।

मेरे मन में एक चिन्ता थी कि पढ़ी-लिखी बड़ी लड़की है, क्या पता किस तरह से उसके मन को प्राप्त करना पड़ेगा। परन्तु, बहुत थोड़े दिनों में ही देख लिया, मन की सड़क के साथ पुस्तकों की दूकान की सड़क की किसी भी जगह कोई काटाकाटी नहीं है। कब उसके सादा मन के ऊपर एक रंग चढ़ गया, आँखों में एक नींद जग गई, कब उसका सम्पूर्ण शरीर-मन जैसे उत्सुक हो उठा, उसे ठीक-ठीक कह नहीं सकता।

यह तो हुई एक ओर की बात। अब दूसरी ओर की भी है, उसे विस्तारपूर्वक कहने का समय आ गया है।

राजसंसार में मेरे श्वसुर की नौकरी थी। बैंक में उनके कितने रुपये जमा हैं, इस सम्बन्ध में जनश्रुति ने अनेक प्रकार के अङ्कपात किये थे, परन्तु कोई भी अङ्क लाख के नीचे नहीं झुकता था। इसका फल हुआ था यही कि उसके पिता की कीमत जैसे-जैसे बढ़ी, हेम का सम्मान भी उतना ही बढ़ता रहा था। हमारे घर के काम-काज की रीति-पद्धति सीख लेने के लिए वह व्यग्र थी, परन्तु माँ ने उसे अत्यन्त स्नेह से किसी में भी हाथ नहीं लगाने दिया। यही क्यों, हेम के साथ ही पहाड़ से जो दासी आई थी, यद्यपि उसे अपने कमरे में नहीं घुसने देती थीं, फिर भी उसकी जाति के बारे में प्रश्न तक नहीं किया कि पीछे कहीं अरुचिकर उत्तर न सुनना पड़े।

इसी तरह दिन बीते जा सकते थे, परन्तु अचानक एक दिन पिताजी के मुँह पर घोर अँधेरा दिखाई पड़ा। मामला यह था—मेरे विवाह में मेरे श्वसुर ने पन्द्रह हजार रुपये नकद एवं पाँच हजार रुपये के गहने दिये थे। पिताजी को अपने एक दलाल-मित्र से खबर मिली कि इसमें हजार रुपये उधार लेकर इकट्ठे किये गये हैं, उसकी व्याज भी नितान्त साधारण नहीं है। लाख रुपये की अफवाह तो एकदम धोखा थी।

यद्यपि मेरे श्वसुर की सम्पत्ति की मात्रा के बारे में मेरे पिता के साथ उनकी किसी भी दिन कोई बात नहीं हुई थी, फिर भी पिताजी ने न जाने

किस युक्ति से निश्चित कर लिया कि उनके समधी ने उनके साथ जानबूझकर धोखा किया है।

उसके बाद, पिताजी की एक धारणा थी, मेरे श्वसुर राजा के प्रधान मन्त्रिमण्डल के कुछ एक हैं। पता लगाकर जाना, वे उस जगह के शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष हैं। पिताजी बोले, अर्थात् स्कूल के हैडमास्टर—संसार में अच्छे पद जितने भी हैं, उनमें सबसे ऊँचे। पिताजी को बड़ी आशा थी, श्वसुर आज के बाद कल जब कार्य से अवकाश लेंगे, उस समय मैं ही राजमन्त्री बनूंगा।

इसी समय रास के उपलक्ष्य में देश के कुटुम्बीजन हमारे कलकत्ते के मकान में आकर जमा हुए। कन्या को देखकर उनके बीच एक कानाफूँसी होने लगी। कानाफूँसी क्रमश: अस्फुट होकर स्फुट हो उठी। दूर सम्पर्क की कोई एक नानी बोल उठीं, "मेरे भाग्य फूट गये। नातबहू ने तो उम्र में मुझे भी मात कर दिया।"

एक और नानी की ही श्रेणी वाली महिला बोलीं, "हमी लोगों को यदि हार न मनवाता तो अपू बाहर से बहू लाने को क्यों जाता।"

मेरी माँ बड़े जोर के साथ कह उठीं, "अरी माँ, यह कैसी बात! बहू की उम्र तो अभी ग्यारह की भी नहीं हुई, इस आने वाले फाल्गुन में बारहवीं में पाँव रखेगी। उजड्डों के देश में दाल-रोटी खाकर बड़ी हुई है, इसीलिए ऐसी बड़ी लग उठी है।"

नानियों ने कहा, "बेटी, अभी तक आँखों से इतना कम तो नहीं दीखता। कन्या पक्ष ने अवश्य ही तुम लोगों से उम्र छिपाई है।"

माँ बोलीं, "हम लोगों ने जन्मपत्री जो देखी थी।"

बात सच थी। परन्तु जन्मपत्र में प्रमाण है कि लड़की की आयु सत्रह वर्ष की है।

प्रवीणाएँ बोलीं, "जन्मपत्र में क्या धोखा नहीं चलता है?"

इसीको लेकर घोर तर्क छिड़ गया, यही क्यों, विवाद हो गया।

इसी समय उस जगह हेमं आ उपस्थित हुई। किसी एक नानी ने जिज्ञासा की, "नातबहू, तुम्हारी उम्र कितनी है, बताओ तो!"

माँ ने उसे आँख दबाकर इशारा किया। हेम उसका अर्थ नहीं समझी; बोली, "सत्रह !"

माँ व्यस्त होकर बोल उठीं, "तुम नहीं जानतीं।"

हेम ने कहा, "मैं जानती हूँ, मेरी आयु सत्रह वर्ष की है।"

नानियाँ परस्पर शरीर को कोंचने लगीं।

बहू की निर्बुद्धिता पर नाराज होकर माँ बोलीं, "तुम तो सब जानती हो ! तुम्हारे पिता ने जो कहा था, तुम्हारी उम्र ग्यारह है।"

हेम ने चौंकते हुए कहा, "पिताजी ने कहा था ? कभी नहीं।"

माँ ने कहा, "अवाक् कर दिया। समधी ने मेरे सामने अपने मुँह से कहा था और लड़की कहती है 'कभी नहीं' !" यह कहकर फिर एक बार आँख दबाई।

इस बार हेम इशारे का मतलब समझी; स्वर को और भी दृढ़ बना कर बोली, "पिताजी ऐसी बात कभी भी नहीं कह सकते !"

इसके बाद जितनी गालियाँ देने लगी, बात की स्याही उतनी ही गाढ़ी होती हुई चारों ओर लिपट गई।

माँ ने नाराज होकर पिता के समीप उनकी बहू की मूर्खता एवं उससे भी अधिक जिद करने की बात कह दी। पिताजी ने हेम को बुलाकर कहा, "क्वारी लड़की की आयु सत्रह वर्ष हो, यह क्या कोई बड़े गौरव की बात है, जिसे ढोल बजाकर कहते रहना होगा ? हमारे यहाँ यह सब नहीं चलेगा, कहे रखता हूँ।"

हाय रे, अपनी पुत्रबधू के प्रति पिताजी का वह मधुमिश्रित स्वर आज एकदम ही कड़ा होकर गढ्ढे में किस तरह उतर आया।

हेम ने व्यथित होकर प्रश्न किया, "कोई यदि मेरी उम्र पूछे तो क्या कहूँ ?"

पिताजी बोले, "झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं है, तुम कह देना मैं नहीं जानती—मेरी सास जानती हैं।"

किस तरह झूठ नहीं बोलना पड़ता, उस उपदेश को सुनकर हेम इस तरह से चुप रह गई कि पिताजी ने समझा, उनका सदुपदेश एकदम व्यर्थ चला हो गया है।

हेम की दुर्गति से दुःख कैसे करूँ, उसके समीप मेरा सिर झुक गया। उस दिन देखा, शरत् प्रभात के आकाश की भाँति उसकी आँखों की वह उदार दृष्टि किसी एक सन्देह से म्लान हो गई है। भीत हरिणी की भाँति उसने मेरे मुँह की ओर देखा। सोचा होगा, "मैं इन लोगों को पहिचान नहीं पा रही हूँ।"

उस दिन एक सुन्दर जिल्द बँधी अँग्रेजी कविता की पुस्तक उसके लिए खरीद लाया। पुस्तक को उसने हाथ में ले लिया एवं धीरे-धीरे आले के ऊपर रख दिया, एक बार खोलकर भी नहीं देखा।

मैं उसके दोनों हाथों को पकड़कर बोला, "हेम, मेरे ऊपर नाराज मत होना। मैं तुम्हारे सत्य में कभी आघात नहीं पहुँचाऊँगा, मैं तो तुम्हारे सत्य के बन्धन में बँधा हुआ हूँ।"

हेम कुछ न कह कर जरा-सा हँस गई। यह हँसी विधाता ने जिसे दी है, उसे कोई बात कहने की आवश्यकता नहीं है।

पिता की आर्थिक उन्नति के बाद से देवता के अनुग्रह को स्थायी करने के लिए नये उत्साह के साथ हमारे घर में पूजा-अर्चना चलती थी। अब तक उन सब क्रियाकर्मों में घर की बहू को नहीं पुकारा गया था। नव बधू के प्रति एकदिन पूजा की सामग्री सजाने का आदेश हुआ, वह बोली, "माँ, बता दीजिए कि क्या करना होगा ?"

इससे किसी के सिर पर आकाश टूटकर गिर पड़ने की बात नहीं थी, कारण, सभी को मालूम था कि मातृहीन प्रवास में कन्या बड़ी हुई है। परन्तु, केवलमात्र हेम को लज्जित करना ही इस आदेश का हेतु था। सभी गाल पर हाथ रख कर बोले, "अरी माँ, यह क्या काण्ड है। यह किस नास्तिक के घर की लड़की है! इस बार घर से लक्ष्मी चली जायेगी, और देर नहीं है।"

इसी उपलक्ष्य में हेम के पिता के प्रति जो नहीं कहा जाना चाहिए, वह कहा गया। जब से कड़वी बातों की हवा चलने लगी थी, हेम ने एकदम चुप रहकर सबको सहन किया था। एकदिन के लिए किसी के सामने भी उसने आँखों से पानी नहीं बहाया था। वह उठकर खड़ी होती हुई बोली, "आप लोग जानती हैं कि उस देश में मेरे पिता को ऋषि कहा जाता है ?"

ऋषि कहा जाता है ! एक बड़ी हँसी फैल गई। इसके बाद से उसके पिता का उल्लेख करते समय कहा जाता, 'तुम्हारे ऋषि पिता'—इस लड़की की सबसे अधिक दर्द की जगह कहाँ है, उसे हमारे परिवार ने जान लिया था।'

वस्तुतः, मेरे श्वसुर ब्राह्म भी नहीं थे, खिस्टान (ईसाई) भी नहीं थे, शायद नास्तिक भी नहीं होंगे। देवार्चन की बात पर किसी दिन उन्होंने विचार भी नहीं किया था। लड़की को उन्होंने बहुत पढ़ाया-लिखाया था, परन्तु किसी दिन भी देवता के बारे में उसे कोई उपदेश नहीं दिया था। वनमाली बाबू ने इसे लेकर उनसे एक बार प्रश्न किया था। उन्होंने कहा था, "मैं जिसे नहीं समझता उसकी सीख देना तो केवल कपटता सिखाना ही होगा।"

अन्तःपुर में हेमी की एक स्वाभाविक भक्त थी, वह थी मेरी छोटी बहिन नारानी। भाभी को प्यार करने के कारण उसे बहुत डाँट सहनी पड़ी थी। परिवार-यात्रा में हेम के सभी अपमानों की खबर मैं उसीके द्वारा सुन पाता था। एक दिन के लिए भी हेम के द्वारा नहीं सुना। इन सब बातों को संकोच के कारण वह मुँह पर ही नहीं ला पाती थी। वह संकोच स्वयं के लिए नहीं था।

हेम अपने पिता के पास से जितनी चिट्ठियाँ प्राप्त करती, उन सबको मुझे पढ़ने के लिए दे देती थी। चिट्ठियाँ छोटी परन्तु रस भरी होती थीं। वह भी पिता को जितनी चिट्ठियाँ लिखती, उन सबको भी मुझे दिखा देती थी। पिता के साथ अपने सम्बन्ध का मेरे संग भाग किये बिना उसका दाम्पत्य जैसे पूर्ण नहीं हो पाता था। उसकी चिट्ठी में ससुराल के बारे में शिकायत का इशारा तक नहीं रहता था। रहने पर मुसीबत आ सकती थी।

नारानी से सुना था, ससुराल की क्या बात लिखती है, इसे जानने के लिए बीच-बीच में उसकी चिट्ठियों को खोल लिया जाता था।

चिट्ठियों में अपराध का कोई प्रमाण न पाकर ऊपर वालों का मन शान्त हो गया था, ऐसी बात नहीं थी। विषम-विरक्त होकर वे सब कहने लगे, "इतनी जल्दी-जल्दी चिट्ठियाँ क्यों डाली जाती हैं ? पिता ही जैसे सब कुछ है, हम लोग क्या कुछ भी नहीं हैं।" इसीको लेकर अनेक अप्रिय बातें चलने लगीं। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा, "अपने पिता की चिट्ठी और किसी को न देकर, मुझे दे दिया करो। कॉलिज जाते समय मैं पोस्ट कर दिया करूँगा।"

हेम ने विस्मित होकर जिज्ञासा की, "क्यों ?"

मैंने लज्जित होकर उसका उत्तर नहीं दिया।

घर में अब सभी ने कहना आरम्भ कर दिया, अपू का दिमाग खराब हो गया है। बी० ए० की डिग्री छींके पर ही लटकी रह गई। लड़के का दोष ही क्या है !

वह तो था ही। दोष सब हेम का था। उसका दोष यह था कि उसकी आयु सत्रह वर्ष थी; उसका दोष यह था कि मैं उसे प्यार करता था; उसका दोष यह था कि विधाता की यही इच्छा थी, इसीलिए मेरे हृदय के रन्ध्र-रन्ध्र में सम्पूर्ण आकाश अब बाँसुरी बजा रहा था।

बी० ए० की डिग्री को मैं चूल्हे में डाल सकता था, परन्तु हेम के कल्याण के लिए प्रतिज्ञा की, पास करूँगा और अच्छी तरह पास करूँगा। इस प्रतिज्ञा की रक्षा करना मुझे उस अवस्था में भी जो सम्भव हो सका, उसके दो कारण थे—एक तो हेम के प्यार के भीतर एक ऐसे आकाश का विस्तार था, जो सङ्कीर्ण आसक्ति के भीतर मन को घेरे नहीं रखता था, उस प्यार के चारों ओर एक भारी स्वास्थ्यकर हवा बहती थी। दूसरे, परीक्षा के लिए जिन पुस्तकों को पढ़ने की आवश्यकता थी, उन्हें हेम के साथ मिलकर पढ़ना असम्भव नहीं था।

परीक्षा पास करने के प्रयत्न में कमर बाँध कर लग गया। एक दिन रविवार को दोपहर में बाहर वाले कमरे में बैठा हुआ मार्टिनो की चरित्रतत्व

सम्बन्धी पुस्तकों की विशेष-विशेष पंक्तियों को बीच-बीच में से चुनकर नीली पेंसिल से लकीर खींच रहा था, इसी समय बाहर की ओर अचानक ही मेरी आँख उठ गई।

मेरे कमरे के सामने वाले आँगन से उत्तर की ओर अन्तःपुर में जाने को एक जीना (सीढ़ियाँ) था। देखा, उसीकी एक खिड़की पर हेम चुपचाप बैठी हुई पश्चिम की ओर देख रही है। उस ओर मालिकों के बगीचे में काञ्चनगाछ गुलाबी फूलों से आच्छादित थे।

मेरी छाती में धक् से एक धक्का लगा; मन के भीतर एक असावधानी का आवरण छिन्न होकर गिर पड़ा। इस निःशब्द गम्भीर वेदना का रूप मैं इतनों दिनों तक स्पष्ट नहीं देख सका था।

कुछ नहीं, मैं केवल उसकी बैठने की भङ्गिमा मात्र ही देख पा रहा था। गोद के ऊपर एक हाथ के ऊपर दूसरा हाथ स्थिर रखा हुआ था, सिर दीवाल के सहारे टिका था, खुले हुए केश बाँये कन्धे पर होते हुए छाती पर झूल रहे थे। मेरे हृदय का भीतरी भाग हाहाकार कर उठा।

मेरा निजी जीवन इस तरह लबालब भर गया था कि मैं कहीं भी किसी शून्यता को लक्ष्य नहीं कर पाता था। आज अचानक अपने अत्यन्त निकट एक वैराग्य का गह्वर देख सका। किस तरह से मैं उसे पूर्ण करूँगा।

मुझे तो कुछ भी नहीं छोड़ना पड़ा। न आत्मीय, न अभ्यास, न कुछ। हेम उन सबको छोड़कर मेरे पास आई है। वे सब कितनी चीजें हैं, उसे मैंने अच्छी तरह सोचा भी नहीं। हमारे घर में अपमान की कण्टक शैया पर वह बैठी थी; उस शयन में मैंने भी उसके साथ हिस्सा कर लिया था। उस दुःख में हेम के साथ मेरा सहयोग था, उससे हम लोगों को अलग नहीं होना पड़ा था। परन्तु, यह गिरिनन्दिनी सत्रह वर्ष तक भीतर-बाहर से कितनी बड़ी एक मुक्ति में पलकर बड़ी हुई है। किस निर्मल सत्य में और उदार आलोक में उसकी प्रकृति ऐसी ऋजु शुभ्र एवं सबल हो उठी है। उससे हेम जो कैसे निरतिशय और निष्ठुर रूप से अलग हो गई है, इतने दिनों में मैं उसे पूर्ण रूप से अनुभव नहीं कर पाया था, क्योंकि, उस जगह उसके साथ मेरा बराबरी का आसन नहीं था।

हेम जो भीतर ही भीतर पल-पल पर मरी जा रही थी। उसे मैं सब कुछ दे सकता था, परन्तु मुक्ति नहीं दे सकता था—वह मेरे स्वयं के भीतर भी कहाँ है ? इसीलिए कलकत्ते की गली में इस छज्जे की फाँक से निर्वाक् आकाश के साथ उसके निर्वाक् मन की बातें होती थीं; एवं किसी-किसी दिन रात में अचानक जग उठकर देखता था कि वह बिछौने पर नहीं है, हाथ के ऊपर सिर रखकर आकाश भरे तारों की ओर मुँह करके छत पर सोई हुई है।

मार्टिनो पड़ा रहा। सोचने लगा, क्या करूँ। बचपन से ही पिता के समीप मेरे संकोच का अन्त नहीं था, कभी मुँह के सामने उनके समीप शिकायत करने का साहस अथवा अभ्यास मुझे नहीं था। उस दिन नहीं ठहर सका। लज्जा का सिर खाकर, उनसे कह बैठा, "बहू का शरीर ठीक नहीं है, उसे एकबार पिता के पास भेज देना चाहिए।"

पिता तो एक दम हतबुद्धि हो गये। मन में लेशमात्र भी सन्देह नहीं रहा कि हेम ने ही इस तरह की अभूतपूर्व स्पर्धा में मुझे प्रवर्तित किया है। उसी समय उन्होंने उठकर अन्तःपुर में जाकर हेम से जिज्ञासा की, "बहूरानी, तुम्हें बीमारी काहे की है ?"

हेम बोली, "बीमारी तो नहीं है।"

पिताजी ने सोचा, यह उत्तर तेजी दिखाने के लिए है।

परन्तु हेम का शरीर भी जो दिन-दिन सूखा जा रहा था, उसे हम लोग प्रतिदिन के अभ्यासवश नहीं समझ पाते थे। एक दिन वनमाली बाबू उसे देखते ही चौंक उठे, "एँ, यह क्या ! हेमी, यह तेरा कैसा चेहरा हो गया है ! बीमार तो नहीं है ?"

हेम ने कहा, "नहीं।"

इस घटना के दस दिन बाद ही, बिना कहे-सुने, अचानक मेरे श्वसुर आ उपस्थित हुए। हेम के शरीर की बात निश्चय ही वनमाली बापू ने उन्हें लिख दी थी।

विवाह के बाद पिता से विदा लेते समय पुत्री ने अपनी आँखों का पानी रोक लिया था। इस बार मिलन के दिन पिता ने जैसे ही ठोड़ी पकड़

कर मुँह ऊपर को उठाया, वैसे ही हेम की आँखों के पानी ने और रोक नहीं मानी। पिता कोई बात ही नहीं कह सके, जिज्ञासा तक नहीं की 'कैसी है'। मेरे श्वसुर ने अपनी पुत्री के मुँह पर ऐसा एक कुछ देखा था, जिससे उनकी छाती फट गई थी।

हेम पिता का हाथ पकड़ कर उन्हें सोने के कमरे में ले गई। बहुत सी बातें पूछने को थीं। उसके पिता का शरीर भी अच्छा नहीं दीख रहा था।

पिताजी ने जिज्ञासा की, "बिटिया, मेरे साथ चलेगी ?"

हेम भिखारिन की तरह बोल उठी, "चलूँगी।"

पिता बोले, "अच्छा, सब ठीक करता हूँ।"

श्वसुर यदि अत्यन्त उद्विग्न न रहे होते तो इस घर में घुसते ही समझ लेते कि इस जगह उनके अब वे दिन नहीं हैं। उनके अचानक आविर्भाव को उपद्रव मानकर पिता जी ने तो अच्छी तरह से बात ही नहीं की। मेरे श्वसुर को याद था कि उनके समधी ने एक समय उन्हें बारम्बार यह आश्वासन दिया था कि जब उनकी खुशी हो, लड़की को वे घर ले जा सकेंगे, यह सत्य अन्यथा हो सकेगा, यह बात वे मन में भी नहीं ला सके थे।

पिताजी तम्बाकू खींचते-खींचते बोले, "समधी, मैं तो कुछ कह नहीं सकता, एक बार इसलिए घर के भीतर—"

घर के भीतर के ऊपर भार डालने का अर्थ क्या है, यह मैं जानता था। समझ गया, कुछ होगा नहीं। कुछ हुआ भी नहीं।

बहूरानी का शरीर अच्छा नहीं है ! इतना बड़ा अन्यायपूर्ण अपवाद !

श्वसुर महाशय ने स्वयं एक अच्छे डाक्टर को लाकर परीक्षा कराई। डाक्टर बोले, "वायु-परिवर्तन आवश्यक है, अन्यथा अचानक एक सख्त रोग हो सकता है।"

पिताजी ने हँसकर कहा, "अचानक एक सख्त रोग तो सभी को हो सकता है। यह क्या कोई एक नई बात है !"

मेरे श्वसुर ने कहा, "जानते तो हैं, वे एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं, उनकी बात क्या—"

पिताजी ने कहा, "ऐसे ढेरों डाक्टर देखे हैं। दक्षिणा के बल पर सभी पण्डितों से सब विधान मिल जाते हैं एवं सभी डाक्टरों से सब रोगों का सार्टिफिकेट भी प्राप्त कर लिया जाता है।"

इस बात को सुनकर मेरे श्वसुर एकदम स्तब्ध हो गये। हेम समझ गई, उसके पिता का प्रस्ताव अपमान के साथ अस्वीकृत हुआ है। उसका मन एकदम काठ हो गया।

मैं और नहीं सह सका। पिताजी के पास जाकर बोला, "हेम को मैं ले जाऊँगा।"

पिताजी गरज उठे, "अच्छा रे—" इत्यादि, इत्यादि।

मित्रों में से किसी-किसी ने मुझसे जिज्ञासा की, जो कहा था, वह किया क्यों नहीं। पत्नी को लेकर जबर्दस्ती बाहर चले जाने से ही काम ठीक हो जाता। क्यों नहीं गया? क्यों नहीं! यदि लोकधर्म के समीप सत्यधर्म को न ठेल पाता, यदि घर के समीप घर के मनुष्य की बलि न दे पाता, तो मेरे रक्त के भीतर बहुयुगीन जो शिक्षा है, वह क्या करने के लिए है। जानते हो तुम लोग? जिस दिन अयोध्या के लोगों ने सीता का विसर्जन करने के लिए दावा किया था, उनके भीतर मैं भी तो था। और उस विसर्जन के गौरव की कथा युग-युगों से जो लोग गाते आ रहे हैं, मैं भी उनमें से एक व्यक्ति हूँ। और, मैंने ही तो उस दिन लोकरञ्जन के लिए स्त्री-परित्याग करने का गुणवर्णन करते हुए मासिकपत्र में निबन्ध लिखा था। हृदय का रक्त देकर मुझे ही एक दिन दूसरी सीता-विसर्जन की कहानी लिखनी होगी, इस बात को कौन जानता था।

पिता और पुत्री का एकबार फिर विदा का क्षण उपस्थित हुआ। इस बार भी दोनों जनों के मुँह पर हँसी थी। पुत्री हँसी-हँसी में ही भर्त्सना करती हुई बोली, "पिताजी, अब यदि कभी तुम मुझे देखने के लिए इस तरह दौड़े-दौड़े इस घर में आओगे तो मैं घर के दरवाजे बन्द कर लूँगी।"

पिता ने हँसी-हँसी में कहा, "फिर यदि आऊँगा तो सेंध काटने के औजार साथ लेकर ही आऊँगा।"

इसके बाद हेम के मुख पर उसकी चिर दिनों की वह स्निग्ध हँसी, फिर एक दिन के लिए भी दिखाई नहीं दी।

उसके बाद क्या हुआ, वह बात और नहीं कह पाऊँगा।

सुना है, माँ पात्री (वधू) को ढूँढ़ रही है। शायद किसी दिन माँ के अनुरोध को अग्राह्य न कर सकूँ, यह भी सम्भव हो सकता है। कारण— रहने दो, और क्या जरूरत है!

बड़ी खबर

कुसुमी बोली, तुमने जो कहा था, इस जमाने की बड़ी-बड़ी सब खबरें तुम मुझे सुनाओगे, अन्यथा मेरी शिक्षा कैसे होगी दादा महाशय ?

दादा महाशय बोले—बड़ी खबरों की झोली लाद कर कौन घूमेगा, बताओ, उसके भीतर बहुत कूड़ा-करकट जो रहता है।

उसे निकाल दो-न !

निकाल देने पर बहुत ही थोड़ा जो कुछ रह जायगा, तब वह तुम्हें छोटी खबर मालूम देगी। परन्तु वास्तव में वही असली खबर होगी।

मुझे असली खबर ही दो।

तो दूँगा। तुम्हें यदि बी० ए० पास करना पड़ता तो सब कूड़ा-करकट तुम्हारी टेबुल पर ढेर बना कर रखना पड़ता; अनेक व्यर्थ की बातों, अनेक झूठी बातों को खींचकर घूमना पड़ता, पुस्तकें लादे हुए।

कुसुमी बोली—अच्छा दादा महाशय, आज-कल के जमाने की एक़ खूब बड़ी खबर को छोटी बनाकर सुनाओ, देखूँ तुममें कितनी क्षमता है ?

अच्छा सुनो।

शान्ति से काम चल रहा था।

महाजनी नाव पर घोरतर झगड़ा चल रहा था, पाल में और डाँड़ में। डाँड़ों का दल ठक्-ठक् करते हुए माँझी के न्यायालय में उपस्थित हुआ, बोला—यह तो और सहन नहीं होता। यह जो तुम्हारा अहंकारी पाल है, यह छाती फुलाकर कहता है कि हम सब छोटे आदमी हैं, क्योंकि हम सब दिन-रात नीचे के तख्तों में बँधे हुए पानी को ठेलते चलते हैं। और वे चलते हैं मर्जी से किसी के भी हाथ के धक्के की परवाह नहीं रखते। इसीलिए वे हुए बड़े आदमी। तुम ठीक करदो कि किसकी कद्र ज्यादा है। हम सब यदि छोटे आदमी हों तो सब मिलकर काम से इस्तीफा दे देंगे, देखें तुम नाव किस तरह से चलाओगे!

माँझी ने देखा मुसीबत है, कुछ डाँड़ों को ओट में ले जाकर चुपचाप कहा—उसकी बातों पर ध्यान मत देना भाइयो! नितान्त हवाई भाषा में वह बातें करता रहता है। तुम सब जवान यदि मरते-जीते हुए मेहनत न करो तो नौका एकदम अचल हो जायगी। और यह पाल खाली बाबूगीरी करता रहता है, ऊपरी मंजिल पर। एक डलिया पर हवा लगते ही वह काम बन्द करके पाँव पर पाँव रख कर पड़ा रहता है नाव की चाल के ऊपर। उस समय फड़-फड़ाना बन्द हो जाता है, आहट भी नहीं मिल पाती। परन्तु, सुख-दुःख, विपद्-आपद, हाट-घाट सभी में तुम्हीं लोगों पर मुझे भरोसा रहता है। इस नवाबी के बोझ को जब-तब तुम लोगों का खिंचाव लेकर ही चलना पड़ता है। कौन कहता है कि तुम लोग छोटे आदमी हो!

माँझी को भय हुआ, बातें शायद पाल के कान में जा पहुँची हैं। उसने आकर कान ही कान में कहा—पाल महाशय, तुम्हारे साथ किसकी तुलना होगी। कौन कहता है कि तुम नाव चलाते हो, वह तो मजदूरों का काम है। तुम अपनी ही फुर्ती से चलते हो और तुम्हारे यार-बख्शी आदि तुम्हारे इशारे पर पीछे-पीछे चलते हैं। फिर झूल पड़ो, यदि कुछ साँस फूल उठी हो तो। इन डाँड़ों के कमीनेपन पर तुम ध्यान मत देना, भाई, उन्हें इस तरह कसकर

बाँध रखा है कि उनकी कितनी भी उछल-कूद क्यों न हो, काम किये बिना नहीं चल सकता।

सुनकर पाल फूल उठा। बादलों की ओर देख-देख कर जम्हाई लेने लगा। परन्तु, लक्षण अच्छे नहीं थे। डाँड़ों की हड्डियाँ मजबूत थीं, इस समय टेढ़े पड़े हुए थे, किस दिन उठ खड़े हों, धक्का मारदें, टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा पाल का घमण्ड। मालूम हो जायगा कि डाँड़ ही नाव को चलाते हैं—आँधी हो, तूफान हो, ज्वार-भाटा हो।

कुसुमी बोली—तुम्हारी बड़ी खबर इतनी सी ही है, क्यों तुम मजाक कर रहे हो ?

दादा महाशय बोले—मजाक जैसा इस समय सुनाई दे रहा है। देखते-देखते किसी दिन बड़ी खबर बड़ी हो उठेगी।

उस समय ?

उस समय तुम्हारे दादा महाशय इन डाँड़ों के साथ ही ताल मिलाने का अभ्यास करगे बैठेंगे।

और, मैं ?

जिस जगह डाँड बहुत अधिक कच्-कच् करेंगे, उस जगह थोड़ा-सा तेल लगाओगी।

दादा महाशय बोले—असली खबर छोटी होती है, जैसे बीज। डाल-पत्ते लेकर बड़ा वृक्ष पीछे आता है। अब तो समझ गई ?

कुसुमी बोली—हाँ, समझ गई। मुँह देखकर जान पड़ा समझी नहीं है। परन्तु कुसुमी में एक गुण है, दादा महाशय के समक्ष वह सहज ही नहीं मानना चाहती कि वह कुछ नहीं समझी। अपनी इस मौसी की अपेक्षा वह बुद्धि में कुछ कम है, इस बात को दबाये रखना ही अच्छा है।

चण्डी

दीदी, तुम शायद उस मुहल्ले के चण्डी बाबू को जानती हो ?

जानूँगी नहीं ! वे तो प्रसिद्ध निन्दक (सभी की बुराई करने वाले) हैं ।

विधाता के कारखाने में विशुद्ध वस्तु तैयार नहीं होती, मिलावट रहती ही है । दैवात् ही कोई-कोई व्यक्ति उतर जाता है । चण्डी उसीका श्रेष्ठ नमूना है । उसकी निन्दकता में कोई मिलावट नहीं है । जानते तो हो कि मैं आर्टिस्ट आदमी हूँ । इसीलिए ऐसी विशुद्ध वस्तुएँ मेरे दरबार में आ जुटती हैं । उस आदमी को एकदम जीनियस कहना ही पड़ता है । जरा भी दूर हटते ही फिर ठिकाना नहीं मिल सकता । एक दिन देखा, अध्यापक अनिल के दरवाजे से कान लगाकर कुछ सुन रहा है । चारों ओर आँख-कान खुले रखने पड़ते हैं, किसी पर भी विश्वास करने का उपाय नहीं है—चोर-उचक्कों से देश भर गया है ।

कहते क्या हो ?

सुनकर अवाक् रह जाओगे, यही उस दिन इस तरह से मेरा चम्पई रंग का अँगौछा खिड़की के ऊपर से बिना पता चले ही गायब हो गया ।

कहते क्या हो, अँगौछा ?

अरे हाँ, अँगौछा ही। कोने पर जरा-सा फट गया था, उसकी सिलाई करली थी।

तुम अनिल बाबू के दरबाजे के पास इस तरह चक्कर क्यों काट रहे थे ? दूसरों के फटे हुए अँगौछों को इकट्ठा करने का रोग उन्हें लग गया है क्या ?

अरे छिः छिः, वे हैं बड़े आदमी, अँगौछा कभी आँखों से भी नहीं देखा। टर्किश तौलिया हुए बिना उनका एक पाँव भी नहीं चलता।

तो फिर ?

मैंने सोचा था, उनकी आमदनी तो अधिक नहीं है। फिर, इतनी बाबूगीरी चलती किस तरह है ?

शायद उधार लेकर।

आजकल के बाजार में उधार मिलना तो सरल नहीं है, उससे अधिक सरल तो धोखा देना है।

अच्छा, तुमने पुलिस में खबर दी थी क्या ?

नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं हुई। वह निकल आया मेरी स्त्री के मैले कपड़े की डलिया के भीतर से। किसी को विश्वास भी नहीं हो सकता।

क्या कहते हो तुम, वह ठीक् जगह पर ही तो था।

आप सीधे आदमी हैं, असल बात को समझ ही नहीं पाते। आप जानते तो हैं मेरे साले कोलू को। वह किस तरह से शरीर पर फूँक मारता फिरता है। पैसा जुड़ता कहाँ से है। काम किया था उन्होंने, और पत्नी ने उसे गुप्त रूप से दबा लिया।

तुम्हें कैसे पता चला ?

हाँ हाँ, यह क्या बिना जाने रह सकता है।

कभी उसे लेने हुए देखा ?

जो ऐसा काम करता है, वह क्या दिखा-दिखा कर करता है। इस ओर देखिए न, पुलिस आँखें बन्द किये हुए है, वे लोग हिस्सा जो लेते रहते हैं। यह सब उत्पात आरम्भ हुए थे उस समय से कि दिखाई पड़े आप लोगों के ये गाँधी महाराज।

इस बीच वे और कहाँ से आ गये ?

यही जो उनकी अहिंसा नीति है। धड़ाधड़ पिटे बिना चोर का चोरी करने का रोग क्या कभी भी हट सकता है ? वे स्वयं रहते हैं कोपीन पहिन कर। एक पैसे का सहारा नहीं है। ये सब लम्बी-चौड़ी बातें उन्हीं को शोभा देती हैं। हम लोग गृहस्थ आदमी हैं, सुनकर आँखें स्थिर रह जाती हैं। इधर एक और नया फन्दा निकला है, जानते तो हो ? यही, जिसे आप लोग कहते हैं 'चन्दा'। उसका मुनाफा कम नहीं है। परन्तु वह कहाँ डूब जाता है, उसका हिसाब कौन रखता है। महाशय, उस दिन मेरे ही घर में आ उपस्थित हुए अनाथ-अस्पताल का चन्दा माँगने को। लज्जा आई, और क्या कहूँ। रसीद बही हाथ में लेकर जो आये थे, आप लोग सभी उन्हें जानते हैं। डाक्टर— नाम लेने की और जरूरत नहीं है। कोई कहीं उनसे जाकर कह ही दे। वे बीच-बीच में आते थे हम लोगों के घर में नाड़ी दबाने को। चवन्नी-पैसा देने से काम नहीं चलता था, उसी तरह चवन्नी-पैसे का फल भी नहीं मिला। फिर भी हजार हो, एम० बी० तो हैं ही। ऐसी आजकल के समय में उनकी चिकित्सा है कि रोगी लोग उनके पास तक नहीं जाते। इसीलिए रुपयों की खींचतान बनी रहती है।

छिः छिः क्या कह रहे हो तुम ?

तो महाशय, मैं मुँहफट आदमी हूँ। सच बात मुझे रोक नहीं पाती। उनके मुँह के सामने ही सुना सकता हूँ। परन्तु क्या कहूँ, मेरे लड़के को वसूली के काम में रखकर मेरा मुँह बन्द कर दिया। उसके द्वारा भी बीच-बीच में संकेत पाता था। दाँया हाथ खूब अच्छी तरह चलता था। समझ गये न ? हमारे देश में आजकल कमीनापन कैसा असह्य हो उठा है, उसका और एक नमूना आपको सुनाता हूँ।

किस तरह का ?

हमारे मुहल्ले में एक बेवकूफ है, जिसका नाम उन लोगों ने रख दिया है 'कविवर'। उसके पास देखा, मेरे बारे में क्या लिखा है। घोर लाहवेल। निन्दकों का दल पक गया है। मुहल्ले में कान लगाने की सुविधा नहीं है। कुत्ता-गीदड़ कहते हुए चिल्लाते रहते हैं मेरे पीछे-पीछे। इतना साहस नहीं होता, यदि इन लोगों के पीछे न रहते, ख्याति प्राप्त संरक्षक सभी गाँधीजी के चेले।

देखूँ, देखूँ क्या लिखा है, बुरा न मानो तो। आदमी का हाथ तो सधा हुआ है—

उजाला जिसका मिटमिटा,
स्वभाव जिसका खिटखिटा,
बड़े को करना चाहे छोटा।

सब तस्वीर काली कर,
अपने मुँह को पोत कर,
सोचता है मैं उस्ताद मोटा।

विधाता के अभिशाप से,
उछला फिरे आप से,
स्वभाव से है बड़ा गँवार।

भौं भौं कर भूँक रहा,
दाँतों को चुभा रहा,
कह दो उसे कुत्ता-सियार।

वह क्या है, आपके दरवाजे पर तो पुलिस है।

क्या मामला है ?

चण्डीबाबू के लड़के के नाम केस आया है।

ए ऽ, किसका केस ?

अनाथ-अस्पताल के चन्दे के रुपयों में वे गड़बड़ कर बैठे हैं।

झूठ बात है। आरम्भ से अन्त तक पुलिस की बनावट है। आप तो जानते ही हैं, मेरा लड़का किसी समय आहार-निद्रा त्यागकर गाँधी के नाम पर दरवाजे-दरवाजे पर चन्दे की भीख माँगता हुआ घूमा था, उसी समय से बराबर उसके ऊपर पुलिस की नजर लगी हुई है। कुछ नहीं, यह पोलिटिकल मामला है।

दादा महाशय; तुम्हारी यह कहानी मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगी।

राजरानी

कल तुम्हें अच्छी नहीं लगी थी, चण्डी को लेकर की गई बकवास। वह एक तस्वीर मात्र थी। मोटी-मोटी लाइनों से बनी हुई, उसमें रस नहीं था। आज तुमसे कुछ कहूँगा, वह सच्ची बात होगी।

कुसुमी अत्यन्त उत्फुल्ल होकर बोली—हाँ, हाँ, वही कहो। तुम्हीं ने तो उस दिन कहा था, मनुष्य कहानी में लपेटकर बराबर सच्ची खबरें देता रहता है। एकदम हलवाई की दूकान सजाये रखता है। सन्देश[1] के भीतर छैना पहिचान में नहीं आता।

दादा महाशय बोले, यह न होने पर मनुष्य के दिन नहीं कटते। कितने ही आख्य-उपन्यास, पारस्य-उपन्यास, पञ्चतन्त्र, न जाने क्या-क्या सजाये गये हैं। मनुष्य बहुत अंशों में बच्चा होता है, उसे रूपकथाओं से भुलाना पड़ता है। और भूमिका की जरूरत नहीं है। इस बार शुरू किया जाय।

एक था राजा, उसकी राजरानी नहीं थी। राजकन्या की खोज में दूत गये अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग,

---

१. एक बंगाली मिठाई का नाम।

मगध, कौशल और काञ्ची। वे सब आकर खबर देते कि महाराज, उन्होंने क्या देखा है। किसी की आँखों के पानी में मोती बरसते हैं, किसी की हँसी से मानिक गिरते हैं। किसी का शरीर चन्द्रमा के प्रकाश से गढ़ा गया है—वह जैसे पूर्णिमा की रात्रि का स्वप्न हो।

राजा सुनते ही समझ गये, बातें बढ़ाकर कही जा रही हैं। राजा के भाग्य से सच्ची बात नहीं जुटती अनुचरों के मुँह पर। वे बोले—मैं स्वयं देखने को जाऊँगा।

सेनापति बोले—तो फौज बु[illegible] ?

राजा बोले—लड़ाई करने [illegible] जा रहा हूँ।

मन्त्री बोले—तो पात्र-मित्रों [illegible] खबर दूँ ?

राजा बोले—पात्र-मित्रों की पसन्द को लेकर कन्या को देखने का काम नहीं चलेगा।

तो फिर राजहस्ती तैयार करने को कह दूँ ?

राजा बोले—मेरे दो पाँव हैं।

साथ में कितने प्यादे जायेंगे ?

राजा बोले—मेरी छाया जायेगी।

अच्छा, तो फिर राजवेश पहिनिये—चुन्नी-पन्ना का हार, माणिक्य-जटित मुकुट, हीरा-जटित कंकन और गजमोती के कुण्डल।

राजा बोले—मैं राज-परिधान तो पहने ही रहता हूँ, इस बार संन्यासी का परिधान पहिनूँगा।

सिर पर लगा लीं जटा, पहिन ली कोपीन, शरीर पर मली भस्म, कपाल पर लगाया तिलक, और हाथ में ले लिया कमण्डलु व बेल की लकड़ी का डण्डा। 'बमबम महादेव' कहकर निकल पड़े मार्ग पर। देश-देश में चर्चा फैल गई—बाबा पिनाकीश्वर उतर आये हैं हिमालय की गुहा से, उनकी एक सौ पच्चीस वर्ष की तपस्या समाप्त हो गई है।

राजा पहले गये अङ्ग देश में। राजकन्या खबर पाकर बोलीं—बुलाओ मेरे पास।

कन्या के शरीर का रंग उज्ज्वल श्यामल, बालों का रंग जैसे फिङ[1] के पंख, दोनों आँखों में हरिण जैसी चौंक पड़ने वाली दृष्टि। वे बैठी हुई शृङ्गार कर रही थीं। कोई बाँदी ले आई स्वर्णचन्दन का लेप, जिससे मुँह का रंग ऐसा हो जाय जैसे चम्पा का फूल हो। कोई ले आई भ्रङ्गलाञ्छन तेल, उससे केश ऐसे हो जायें जैसे पम्पासरोवर की लहरें हों। कोई ले आई मकड़ी के जाल जैसी साड़ी। कोई ले आई हवा से भी हल्की ओढ़नी। यही करते-करते दिन के तीन पहर बीत गये। किसी तरह भी कुछ मन के मुताबिक नहीं हुआ। संन्यासी से बोलीं—बाबा, मुझे ऐसे आँखों को भ्रम में डालने वाले साज का पता बता दो, जिससे राज-राजेश्वर को चकाचौंध लग जाय, राजकाज पड़ा रह जाय, केवल मेरे मुँह की ओर देखते ही दिन-रात बिताते रहें।

संन्यासी बोले—और कुछ भी नहीं चाहिए ?

राजकन्या बोलीं—नहीं, और कुछ भी नहीं।

संन्यासी बोले—अच्छा, तो मैं जाता हूँ, पता लगने पर न होगा, फिर मिलूँगा।

राजा वहाँ से गये बङ्ग देश में। राजकन्या ने सुनी संन्यासी के नाम की चर्चा। प्रणाम करके बोलीं—बाबा, मुझे ऐसा कण्ठ दो, जिससे मेरे मुँह की बातों से राजराजेश्वर के कान भर जायँ, सिर घूम जाय, मन उतावला हो उठे। मेरे अतिरिक्त और किसी की भी बात उनके कान में न पड़े। मैं जो बुलवाऊँ वही बोलें।

संन्यासी बोले—उसी मन्त्र को खोजने के लिए मैं निकला हूँ। यदि मिलेगा तो लौटकर भेट करूँगा।

कहकर वे चले गये।

गये कलिङ्ग में। वहाँ दूसरी ही हवा थी अन्तःपुर में। राजकन्या मन्त्रणा कर रही थीं कि किस तरह से काञ्चीराज को जीतकर उनका सेनापति वहाँ की रानी का सिर नीचा कर दे सकता है, और कौशल का घमंड भी

---

१. एक चिड़िया का नाम, जो मटमैले रंग की होती है।

उन्हें सहन नहीं हो रहा था। उसकी राजलक्ष्मी को बाँदी बनाकर, उनके पाँवों में तेल मलने के काम में लगा दिया जायगा।

संन्यासी की खबर पाकर बुलवा भेजा, बोलीं—बाबा, सुना है, श्वेतद्वीप में सहस्रघ्नी अस्त्र है, जिसके तेज से नगर-ग्राम सब कुछ जलकर भस्म हो जाते हैं। मैं जिनसे विवाह करूँगी मैं चाहती हूँ, उनके पाँवों के पास बड़े-बड़े राजबन्दी हाथ जोड़े खड़े रहें, और उन राजाओं की स्त्रियाँ वन्दिनी होकर कोई तो चँवर डुलाये, कोई छत्र पकड़कर खड़ी रहे और कोई मेरा पनडब्बा लाये।

संन्यासी बोले—और कुछ नहीं चाहिए तुम्हें ?

राजकन्या बोलीं, और कुछ भी नहीं।

संन्यासी बोले—उन देशों को भस्म कर देने वाले अस्त्र की खोज में जा रहा हूँ।

संन्यासी चले गये। बोले, धिक्कार है। चलते-चलते आ पड़े एक वन में। खोल फेंके जटाजूट। झरने के पानी में स्नान करके शरीर की भस्म धो डाली। तब तीन प्रहर का समय हो चुका था। धूप तेज थी, शरीर श्रान्त था, क्षुधा प्रबल थी। आश्रम ढूंढ़ते-ढूंढ़ते नदी के किनारे जाकर देखी एक पत्तों की कुटिया। उस जगह एक छोटा चूल्हा बनाकर एक लड़की ने साग-सब्जी चढ़ा रखी थी राँधने के लिए। वह बकरियाँ चराती थी वन में, वह मधु (शहद) एकत्र कर राजमहल में भेज देती थी। दिन कट गया था इसी काम में। अब सूखी लकड़ी जलाकर शुरू किया था रसोई बनाना। उसके पहनने के कपड़ों में दाग लग रहे थे, उसके दोनों हाथों में दो शंख की चूड़ियाँ थीं, कान में लगा रखी थी एक धान की सींक। दोनों आँखें थीं उसकी भँवरे की तरह काली। स्नान करके उसने भींगे बालों को पीठ पर फैला दिया था जैसे बादलों से पूर्ण रात्रि का अन्तिम प्रहर हो।

राजा बोले—बड़ी भूख लग रही है।

लड़की बोली—थोड़ा-सा सब्र करिए, मैंने रसोई चढ़ा दी है, अभी तैयार हो जायगी आपके लिए।

कन्या के शरीर का रंग उज्ज्वल श्यामल, बालों का रंग जैसे फिङ[1] के पंख, दोनों आँखों में हरिण जैसी चौंक पड़ने वाली दृष्टि। वे बैठी हुई शृङ्गार कर रही थीं। कोई बाँदी ले आई स्वर्णचन्दन का लेप, जिससे मुँह का रंग ऐसा हो जाय जैसे चम्पा का फूल हो। कोई ले आई भ्रङ्गलाञ्छन तेल, उससे केश ऐसे हो जायें जैसे पम्पासरोवर की लहरें हों। कोई ले आई मकड़ी के जाल जैसी साड़ी। कोई ले आई हवा से भी हल्की ओढ़नी। यही करते-करते दिन के तीन पहर बीत गये। किसी तरह भी कुछ मन के मुताबिक नहीं हुआ। संन्यासी से बोलीं—बाबा, मुझे ऐसे आँखों को भ्रम में डालने वाले साज का पता बता दो, जिससे राज-राजेश्वर को चकाचौंध लग जाय, राजकाज पड़ा रह जाय, केवल मेरे मुँह की ओर देखते ही दिन-रात बिताते रहें।

संन्यासी बोले—और कुछ भी नहीं चाहिए ?

राजकन्या बोलीं—नहीं, और कुछ भी नहीं।

संन्यासी बोले—अच्छा, तो मैं जाता हूँ, पता लगने पर न होगा, फिर मिलूँगा।

राजा वहाँ से गये बङ्ग देश में। राजकन्या ने सुनी संन्यासी के नाम की चर्चा। प्रणाम करके बोलीं—बाबा, मुझे ऐसा कण्ठ दो, जिससे मेरे मुँह की बातों से राजराजेश्वर के कान भर जायँ, सिर घूम जाय, मन उतावला हो उठे। मेरे अतिरिक्त और किसी की भी बात उनके कान में न पड़े। मैं जो बुलवाऊँ वही बोलें।

संन्यासी बोले—उसी मन्त्र को खोजने के लिए मैं निकला हूँ। यदि मिलेगा तो लौटकर भेट करूँगा।

कहकर वे चले गये।

गये कलिङ्ग में। वहाँ दूसरी ही हवा थी अन्तःपुर में। राजकन्या मन्त्रणा कर रही थीं कि किस तरह से काञ्चीराज को जीतकर उनका सेना-पति वहाँ की रानी का सिर नीचा कर दे सकता है, और कौशल का घमंड भी

---

1. एक चिड़िया का नाम, जो मटमैले रंग की होती है।

उन्हें सहन नहीं हो रहा था। उसकी राजलक्ष्मी को बाँदी बनाकर, उनके पाँवों में तेल मलने के काम में लगा दिया जायगा।

संन्यासी की खबर पाकर बुलवा भेजा, बोलीं—बाबा, सुना है, श्वेतद्वीप में सहस्रघ्नी अस्त्र है, जिसके तेज से नगर-ग्राम सब कुछ जलकर भस्म हो जाते हैं। मैं जिनसे विवाह करूँगी मैं चाहती हूँ, उनके पाँवों के पास बड़े-बड़े राजबन्दी हाथ जोड़े खड़े रहें, और उन राजाओं की स्त्रियाँ वन्दिनी होकर कोई तो चँवर डुलाये, कोई छत्र पकड़कर खड़ी रहे और कोई मेरा पनडब्बा लाये।

संन्यासी बोले—और कुछ नहीं चाहिए तुम्हें ?

राजकन्या बोलीं, और कुछ भी नहीं।

संन्यासी बोले—उन देशों को भस्म कर देने वाले अस्त्र की खोज में जा रहा हूँ।

संन्यासी चले गये। बोले, धिक्कार है। चलते-चलते आ पड़े एक वन में। खोल फेंके जटाजूट। झरने के पानी में स्नान करके शरीर की भस्म धो डाली। तब तीन प्रहर का समय हो चुका था। धूप तेज थी, शरीर श्रान्त था, क्षुधा प्रबल थी। आश्रम ढूंढ़ते-ढूंढ़ते नदी के किनारे जाकर देखी एक पत्तों की कुटिया। उस जगह एक छोटा चूल्हा बनाकर एक लड़की ने साग-सब्जी चढ़ा रखी थी राँधने के लिए। वह बकरियाँ चराती थी वन में, वह मधु (शहद) एकत्र कर राजमहल में भेज देती थी। दिन कट गया था इसी काम में। अब सूखी लकड़ी जलाकर शुरू किया था रसोई बनाना। उसके पहनने के कपड़ों में दाग लग रहे थे, उसके दोनों हाथों में दो शंख की चूड़ियाँ थीं, कान में लगा रखी थी एक धान की सींक। दोनों आँखें थीं उसकी भँवरे की तरह काली। स्नान करके उसने भींगे बालों को पीठ पर फैला दिया था जैसे बादलों से पूर्ण रात्रि का अन्तिम प्रहर हो।

राजा बोले—बड़ी भूख लग रही है।

लड़की बोली—थोड़ा-सा सब्र करिए, मैंने रसोई चढ़ा दी है, अभी तैयार हो जायगी आपके लिए।

राजा बोले—और, तुम क्या खाओगी तब ?

वह बोली—मैं वन की लड़की हूँ, जानती हूँ कि कहाँ से फल-मूल इकट्ठे करके पाये जा सकते हैं। वही मेरे लिए ढेर हो जायँगे। अतिथि को अन्न देकर जो पुण्य होता है, गरीबों के भाग्य में वह तो सहज ही नहीं जुट पाता।

राजा बोले—तुम्हारा और कौन है ?

लड़की बोली—मेरे बूढ़े पिता हैं, वन के बाहर उनका छोटा-सा घर है। मेरे अतिरिक्त उनका और कोई नहीं है। काम खत्म करके कुछ खाने को ले जाती हूँ उनके पास। मेरे लिए वे राह देख रहे हैं।

राजा बोले—तुम अन्न लेकर चलो, और मुझे दिखा दो वे सब फल-मूल जिन्हें स्वयं इकट्ठे करके खाती हो।

कन्या बोली—मुझे अपराध जो लगेगा।

राजा बोले—तुम देवता का आशीर्वाद पाओगी। तुम्हें कोई भय नहीं है। मुझे राह दिखाती हुई ले चलो।

पिता के लिए तैयार की हुई अन्न की थाली वह सिर पर रखकर ले चली। फल-मूल संग्रह करके दोनों जनों ने उसीको खा लिया। राजा ने जाकर देखा, बूढ़ा बाप फूँस के घर के दरवाजे पर बैठा है। वह बोला—बेटी, आज देर क्यों हो गई ?

कन्या बोली—पिताजी, अतिथि को लाई हूँ तुम्हारे घर में।

वृद्ध व्यस्त होकर बोला—हमारा गरीबों का घर है, क्या देकर मैं आतिथ्य सेवा करूँ ?

राजा बोले—मैं तो और कुछ भी नहीं चाहता, पाई है तुम्हारे कन्या के हाथ की सेवा। आज मैं विदा लेता हूँ। किसी दूसरे दिन आऊँगा।

सात दिन सात रात बीत गये, इस बार राजा आये राजवेष में। उनके घोड़े-रथ सब कुछ रह गये वन के बाहर ही। वृद्ध के पाँवों के समीप सिर रख कर प्रणाम किया, बोले—मैं विजयपत्तन का राजा हूँ। रानी ढूँढ़ने को निकला

था देश-विदेश में। इतने दिनों बाद पाई है—यदि तुम मुझे दान करो, और कन्या राजी हो।

वृद्ध की आँखें पानी से भर गईं। आया राजहस्ती—लकड़हारिन लड़की को बगल में बैठाकर राजा लौट गये राजधानी को।

अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग की राजकन्याओं ने सुनकर कहा, छि: !

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जन्म–कलकत्ता, ६ मई सन् १८६१
मृत्यु–कलकत्ता, ७ अगस्त सन् १९४१

रविबाबू का जन्म कलकत्ते के एक सम्पन्न ठाकुर परिवार में हुआ। उनके पितामह द्वारिकानाथ ठाकुर और उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर अपनी उदारता, दानशीलता एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के कारण बंगाल में अत्यन्त लोकप्रिय थे।

उनमें कविता लिखने की प्रवृत्ति दैवी थी। वह धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। सन् १९१२ में उन्होंने गीतांजलि लिखी। यह काव्य-कृति इतनी प्रसिद्ध हुई कि सन् १९१४ में आपको नोबुल पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९४० ई० में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने आपको 'डाक्टर आफ लिटरेचर' उपाधि से विभूषित किया।

गुरुदेव ने अँग्रेजी और बँगला में अनेक पुस्तकें लिखीं तथा दिन-पर-दिन साहित्य की उन्नति की। सन् १९०१ में संसार-भ्रमण करने के बाद आपने बोलपुर नामक स्थान पर 'शांति-निकेतन' की स्थापना की तथा संसार के सम्मुख भारत की प्राचीन गौरवमयी सभ्यता को प्रस्तुत किया।

विश्व के साहित्यिक और कलात्मक क्षेत्र में रविबाबू ने देश के गौरव को बहुत उन्नत किया है।

रवीन्द्र-साहित्य

गोरा	६-००
गीताञ्जलि	३-००
माली	२-००
अपनी दुनिया	२-००
दृष्टिदान	२-००
काबुली वाला	२-००
ठकुरानी बहू का बाजार	२-००
दुर्भाग्य चक्र	२-००
तीन-साथी	२-००
क्षुधित-पाषाण	२-००
महामाया	२-००
अन्तिम कविता	२-००
रक्तकरवी	२-००
पराया	२-००
मणिहीन	२-००
नष्ट नीड़	२-००
उपवन	२-००
चिरकुमार सभा	२-००
डाकघर	२-००
जीवन का सत्य	२-००
गृह प्रवेश	२-००
प्रायश्चित्त	२-००
नटी की पूजा	२-००
चित्रांगदा	२-००
राजर्षि	२-००
चार अध्याय	२-००
तपस्विनी	२-००
राजा	२-००

प्रभात प्रकाशन

२०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६.